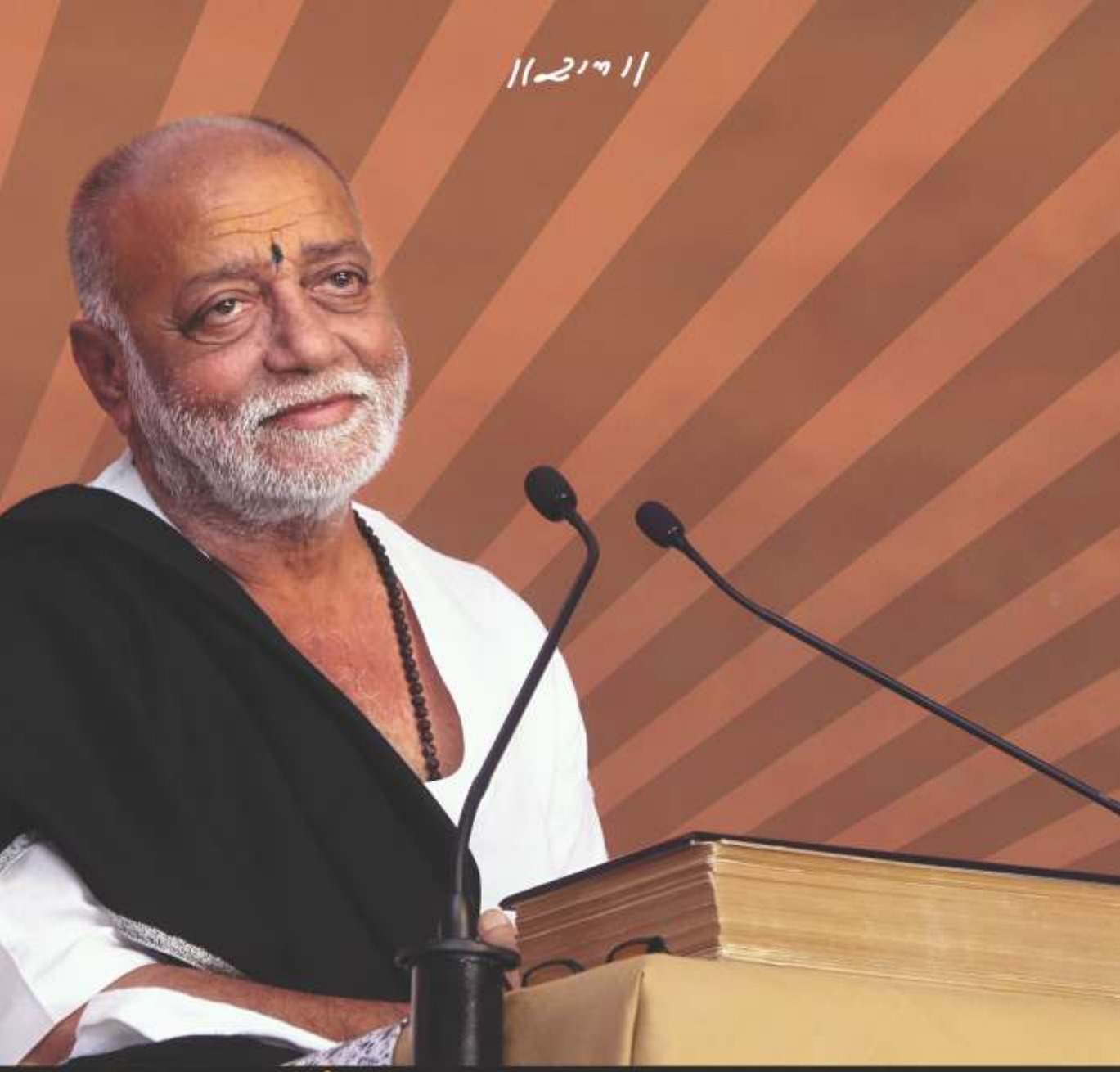

मानस-कन्याकुमारी

कन्याकुमारी (तमिलनाडु)

॥ रामकथा ॥

मोरारिबापू

सब लच्छन संपन्न कुमारी। होइहि संतत पियहि पिआरी।
जौं तपु करै कुमारि तुम्हारी। भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी।।

यहां ये थ्री सी का मिलन तो है ही। ये अरबी समुद्र है, बंगाल की खाड़ी है, हिन्द महासागर है। यहां सागर का मिलन है ही। लेकिन यहां असलियत में तो तीन आध्यात्मिक सी है। एक माँ के तप की धारा। दूसरी स्वामीजी के त्याग की धारा। और तीसरी एक पहाड़ अथवा तो इर्द–गिर्द में रही ये माँ की मूर्ति, यहां जो मंदिर है माँ का ये तीसरी धारा है तितिक्षा। मेरी समझ में त्याग, तप और तितिक्षा ये तीन धाराओं का यहां संगम है।

– मोरारिबापू

|| **रामकथा** ||
मानस-कन्याकुमारी

मोरारिबापू
कन्याकुमारी (तमिलनाडु)
दिनांक : ७-१-२०१७ से १५-१-२०१७
कथा-क्रमांक : ८०५

प्रकाशन :
जनवरी, २०१९

प्रकाशक
श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट,
तलगाजरडा (गुजरात)
www.chitrakutdhamtalgajarda.org

कोपीराईट
© श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट

संपादक
नीतिन वडगामा
nitin.vadgama@yahoo.com

रामकथा पुस्तक प्राप्ति सम्पर्क-सूत्र :
ramkathabook@gmail.com
+91 704 534 2969 (only sms)

ग्राफिक्स
स्वर एनिम्स

प्रेम-पियाला

मोरारिबापू ने कन्याकुमारी (तमिलनाडु) की पावन भूमि में दिनांक ७-१-२०१७ से १५-१-२०१७ दरमियान रामकथा का गान किया। 'मानस' की कन्याकुमारी जो हिमालय की कन्या है उसको केन्द्र में रखते हुए बापू ने इस रामकथा 'मानस-कन्याकुमारी' विषय पर केन्द्रित की।

ब्रह्मविद्या, वेदविद्या, अध्यात्मविद्या, योगविद्या और लोकविद्या जैसी विद्याओं का ज़िक्र करते हुए बापू ने कहा कि पांच प्रकार की विद्या जिसमें हो वह कन्याकुमारी है। हमारे घर में एक कन्या है, बेटी है उसमें ये पांच विद्या यदि हो तो उसको भी कन्याकुमारी समझो। हर घर में कन्याकुमारी है। साथ ही बापू का कहना हुआ कि जो माँ की साधना करेगा, कन्याकुमारी की साधना करेगा, ये पराम्बा की साधना करेगा उसको पांचों विद्या मिलेगी।

कन्याकुमारी भवानी ने एक पैर से खड़े रहकर कठिन तपस्या की इसका बापू ने अपने अंदाज़ में अर्थघटन किया कि ये तो हुआ ही है। माँ सबकुछ कर सकती है। लेकिन मेरी व्यासपीठ को समझ में आ रहा है कि एक पैर से तप करना इसका मतलब एकनिष्ठ होकर तप करना। पैर को पद भी कहते हैं। पद माने वचन भी। गुरु के एक वचन को जीवनभर पकड़कर जीने की निष्ठा उसीका नाम है एक पैर तप करना।

पार्वती को व्यक्तिरूपा, शक्तिरूपा और भक्तिरूपा के परिप्रेक्ष्य में अर्थघटित कर बापू ने निवेदन किया कि पार्वती हिमालय के घर जन्म लेती है। बड़ी होती है। उत्सव होता है। नारद आदि संत आये। उसकी भविष्य की बातें कही। नामकरण किया। ये सब पार्वती को केन्द्र में रखकर जो कथा है वो पार्वती व्यक्ति है। ये सब कन्यारूप है। फिर यहां उसने जो तप किया वो पार्वती केवल कन्यारूप नहीं है; व्यक्तिरूप नहीं है, ये शक्तिरूप है। इतना कठिन तप, ये शक्तिरूपा पार्वती है। और तपस्या के बाद जब उसकी कसौटी की गई सप्तऋषियों के द्वारा, वो पार्वती शक्तिरूपा भी नहीं है, व्यक्तिरूपा भी नहीं है। वो पार्वती भक्तिरूपा है; शरणागत पार्वती है।

संशय, शरणागति और समाधान को कन्याकुमारी-पार्वती के जीवन के तीन पड़ाव के रूप में रेखांकित करते हुए बापू ने अपना दर्शन इन शब्दों में प्रकट किया, ''कन्याकुमारी माने पार्वती के जीवन के तीन पड़ाव है। जब सती थी तो उसके जीवन का एक पड़ाव संशय-संदेह जो उसने राम पर किया और परिणामस्वरूप वो पूरा जीवन उसका बीत गया। तो सती के रूप में उसका एक पड़ाव है संशय। पार्वती के रूप में दो पड़ाव है। एक है शरणागति। 'जन्म कोटि लगि रगर हमारी।' ये कन्याकुमारी के रूप में शरणागति। और भवानी बनकर जब प्रश्न करती है कि रामतत्त्व क्या है, तब समाधान मिला और वो कहती है, 'मैं कृतकृत्य भयऊँ अब तव प्रसाद बिसेस।' माँ कन्याकुमारी के जीवन के भी ये तीन पड़ाव है।''

'मानस-कन्याकुमारी' रामकथा निमित्त बापू की व्यासपीठ से यूं मातृशक्ति का महिमागान हुआ और 'मानस' की पार्वती-कन्याकुमारी का माहात्म्य भी प्रकट हुआ।

– नीतिन वडगामा

मानस-कन्याकुमारी : १

गुरुपद में एकनिष्ठ बनकर खड़ी रहे वह साधिका का नाम है कन्याकुमारी

सब लच्छन संपन्न कुमारी। होइहि संतत पियहि पिआरी।
जौं तपु करै कुमारि तुम्हारी। भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी।।

बाप! भगवती कन्याकुमारी की करुणाभरी कृपा से फिर एक बार मेरी व्यासपीठ को यहां आने का अवसर प्राप्त हुआ। उसी का हृदय में अहोभाव लेते हुए माँ के चरणों में प्रणाम करते हुए और जिस उंचाई पर पूरे विश्व को 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।' का औपनिषदी मन्त्र को दसों दिशा में गुंजित करनेवाले हमारे देश के एक युवा संन्यासी स्वामी विवेकानंदजी को जहां अपने आगे के लक्ष्य के लिए माँ भगवती ने जो प्रेरणा प्रदान की थी। ऐसी इस आध्यात्मिक उंचाई को भी प्रणाम।

पहली बार जब सालों पहले तीस-बत्तीस साल पहले यहाँ आना हुआ था तब ये संत कवि तिरुवल्लुवर की मूर्ति प्रस्थापित नहीं थी। आज उसी का भी दर्शन हो रहा है। और तीन सागर का संगम तो यहां है ही। इस परम पावन धरा को प्रणाम करते हुए विवेकानंद केन्द्र की ओर से रामकथा का जो स्वागत किया गया ऐसे सुंदर स्थान में कथा का आयोजन हुआ। इस विवेकानंद केन्द्र के प्रधान आदरणीय व्यक्ति से लेकर आप सभी जो इस कार्य में लगे हुए हैं। मेरी व्यासपीठ आप सबका स्वागत करती है।

पहले भी इसी केन्द्र के अंतर्गत कथा हुई थी। यहां ही मैं ठहरा था। और जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है तो प्रमोशन मिलता है। तो आज आये निकट हम। बड़ा सुंदर मंज़र यहां से दिख रहा है। मन तो हो रहा है कि यहां मैं तीन घंटे ऐसे ही बैठा रहूं और आप सुनते जाओ मौन को। ऐसे सुंदर मंज़र है। ठहरना भी मेरा सुंदर स्थान में है। उसकी बड़ी प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। कथा में आये हुए देश-विदेश से सभी श्रावक भाई-बहन और इस कथा के केवल निमित्तमात्र यजमान सेवा करने के लिए जो बने हैं उस परिवार को और आप सभी को व्यासपीठ से मेरा प्रणाम।

जीवन के चार पडाव होते हैं बाप! एक पड़ाव का नाम है जंगल। एक समय हमारा भी ऐसा था कि हम जंगली थे आदिमानव के रूप में। आज तो हम अमीबा से लेकर अणुबम तक पहुंच चुके हैं। इतनी बड़ी लम्बी यात्रा हम लोगों ने की है। उससे फ़ायदे-गैरफ़ायदे दोनों हैं। लेकिन अमीबा जो, आप समझ गए कि अमीबा में किस बात का संकेत है। जो पढ़े हैं उनको पता है। वहीं से इतनी छलांग है कि अणु तक पहुंचे हैं। तो आदिमानव जो था वो तो केवल जंगल में रहा। जीवन के चार अध्याय है बाप! इसको पहले दिन मैं और आप सब समझें। जंगल की अपनी महिमा है अवश्य, यस। उसकी भी चर्चा करेंगे आये दिन। लेकिन दूसरा मुकाम हमारा जो डार्विन ने उत्क्रांतिवाद की बातें कहीं उसको एक ओर रखिये, लेकिन जीवनसाधना का जो उत्क्रांतिवाद है, आध्यात्मिक जो डेवलप हमारा होता हैं, विकसित जो हम होते हैं। उसमें दूसरा मुकाम व्यासपीठ को लगता है, वन है। पहले जंगल; फिर वन। यदि इसी रूप में हमारी यात्रा लक्ष्य तक आगे बढ़ती रहे। जो स्वामीजी ने कहा था, उत्तिष्ठत, जाग्रत और तू उसी लक्ष्य को प्राप्त कर।

तो जंगल से निकलें । दूसरा पडाव हैं वन वहां भी ठहरना मत। हम और आप वहीं से भी आगे निकलें। और तीसरा पडाव हौता है आध्यात्मिक जगत के बारे में उसका नाम है उपवन। वन से थोड़ा-थोड़ा बेहतर। जिसको कहते हैं जहां माँ हो। कई जन्मों की जंगलयात्रा करते हुए, वन से गुजरते हुए, उपवन का स्वाद लेते हुए हम माँ के घर में आये हैं। इसलिए मैंने सोचा कि मैं किस विषय पर बोलूं? तो 'मानस' में 'कन्या' शब्द तो कई बार आया। जानकी के बारे में, माँ पार्वती के बारे में। 'कुमारी' शब्द भी आया। कभी दक्ष कुमारी, ब्रजेश कुमारी।

न त कन्या बरु रहउ कुआरी ।

कंत उमा मम प्रानपिआरी ।।

भवानी की माता महारानी मैना का वचन है। वो नगाधिराज हिमालय से कहती हैं कि हमारी बेटी को वर और धन यदि अनुकूल न मिले तो हमारी आलोचना होगी कि आखिर पर्वत जो जड़ ठहरा! उसमें क्या बुद्धि! सब लोग पत्थर को जड़ कहते हैं! हम पहाड में रहने वाले। इससे तो बेहतर है कि कन्या कुमारी रह जाये, कन्या कुमारी रहे, सदा-सर्वदा। क्यों? तो हे पतिदेव,'कंत उमा मम प्रानपिआरी।' मुझे मेरी कन्या प्राणाधिक प्रिय है। तो दो पंक्ति में 'कुमारी' शब्द है। एक पंक्ति में 'कन्याकुमारी' शब्द भी है। लेकिन 'कुमारी' शब्दवाली पंक्तियां मैं उठा रहा हूं और कथा का नाम रहेगा 'मानस-कन्याकुमारी।'

यहां हिमाचल कन्या ने तपस्या की है। एक तपस्या की कथा तो 'मानस' में उद्धृत है ही। और यहां की कथा थोड़ी बिलग है। दोनों के केन्द्र में नारद है। लेकिन 'मानस' के उमाचरित्र में नारद की सकारात्मक भूमिका है। यहां जो कन्याकुमारी तपस्या कर रही है उसकी शादी की भूमिका में नारद की भूमिका थोड़ी विपरीत है। लक्ष्य एक है, मार्ग भिन्न है। 'मानस' में कन्याकुमारी पार्वती जो तप करती है शिव को प्राप्त करने के लिए नारदवचन है, गुरुवचन है, नगाधिराज हिमालय, आपकी बेटी यदि तप करे तो शिव प्रारब्ध को बदल सकते हैं, मिटा सकते हैं, भावि को मिटा सकते हैं। तो उस समय भवानी ने तप किस जगह किया, उल्लेख 'मानस' में नहीं है। यहां कन्याकुमारी जो भवानी ने तप किया वो शिव को प्राप्त करने के लिए ही किया। और वहां यदि भवानी और शिव का ब्याह हो और उसके संसार से पुत्र जन्म हो तो वो तारकासुर को मारे और तारकासुर मरे तो समाज की पीड़ा खत्म हो। यहां जो कन्याकुमारी ने तप किया उसमें तप तो है। शिव की प्राप्ति के लिए तप है, अवश्य। उसका लक्ष्य है शिवप्राप्ति। बहुत तप किया है कठिन और उसका जिक्र 'मानस' में भरपूर है कि भवानी ने कैसा-कैसा तप किया। उसकी जितनी चौपाई हम ले पाएं हमारे जीवन के जागरण के लिए उसकी चर्चा हम करेंगे, जो तुलसीजी ने कहा। यहां जो स्वरूप है; वहां रोप पर भी हैं कि कन्याकुमारी भवानी ने कठिन तपस्या की और फिर एक पैर से तपस्या की। जो चित्रजी आपके सामने है। हमारे पुराणों में, हमारे ग्रंथों में एक पैर से तप करनेवाले कई आख्यान हैं। जितना स्मृति में आएगा, मैं कहूंगा। कुछ नामोल्लेख केवल कर लूं।

एक तो भवानी ने एक पैर से तपस्या की यहां। दूसरा बहुत बड़ा आख्यान है ध्रुव का। ध्रुव ने एक पैर से तपस्या की वो गाथा आपने सुनी होगी। एक पैर से तप करनेवाले एक महात्मा है ऋषि मार्कंडेय। जिसने एक पैर से तपस्या की। परशुरामजी के पिता जमदग्निजी महाराज, उसके जीवन में भी एक पैर से तपस्या करने का उल्लेख मिला। आज के काल में एक पैर से तपस्या करना जरा कठिन लगता है, बड़ा दुर्गम लगता है। अवश्य, उस समय लोग करते थे, कर सकते थे। दो पैर से खड़े रहकर तो कई तपस्या करते हैं। आज भी आपने कईयों को देखे होंगे जो खड़े श्री बनकर तपस्या करते हैं, सालों तक खड़े रहते हैं। सोना हो खड़े-खड़े, खाना, बस विश्राम उसका खड़े-खड़े। खड़े-खड़े, तप। लेकिन एक पैर से तपस्या करना बहुत कठिनतम तप है । उपवास, खाना-पीना बंद कर दो, बैठे रहो, पानी भी छोड़ दो, पत्ते भी छोड़ दो 'मानस' की कन्याकुमारी ने जो किया है।

पुनि परिहरे सुखानेउ परना।

उमहि नाम तब भयउ अपरना।

अपर्णा कहलाई। उसका नाम ही अपर्णा हो गया।

बहुत कठिन तप का जिक्र 'मानस' में आया है। लेकिन यहां जो माँ खड़ी वह एक पैर से खड़ी है। माँ कर

सकती है। ध्रुव कर सकता है। मार्कंडेय कर सकते हैं। कई महापुरुष कर सकते हैं। लेकिन सबके लिए ये संभव नहीं हैं, असंभव। गिने-चुने लोग, तपस्वी लोग मिलते हैं जो एक पैर से तप कर रहे हैं। किया, फल पाया। मुझे यदि पूछा जाये कि एक पैर की तपस्या का मतलब क्या तो में ये कहूं, ये तो हुआ ही है ध्यान देना, मैं इसको नकार नहीं रहा प्लीज़, ये तो हुआ ही है। माँ क्या नहीं कर सकती? सब कुछ कर सकती है। ध्रुव कुछ भी कर सकता है, यस। लेकिन आज के सन्दर्भ में हम दो पैर भी ज्यादा खड़े नहीं रह पाते; एक पैर से तप? मेरी व्यापीठ को समझ में आ रहा हैं कि एक पैर से तप करना इसका मतलब है एकनिष्ठ होकर तप करना। पैर को एक पद भी कहते हैं। पैर माने पद; पद माने पद्य तो कविता भी हो गई। पद माने वचन भी हो गया। पद माने कोई स्थान, कोई स्टेटस, कोई अवस्था का नाम भी पद हो गया। पद माने वचन भी। हम भले दो पैर से छलें, खडे रहें, लेकिन गुरु के वचन को पकड़कर एक वचन को जीवनभर पकड़कर के जीने की निष्ठा उसी का नाम है एक पैर तप करना।

सप्तऋषि जैसे महान महापुरुषों की बात को उमा ने, 'मानस' की उमा ने, 'मानस' की कन्याकुमारी ने ठुकरा दिया। सप्तऋषि जब कहने गये कि भवानी किसके लिए तप कर रही हैं? इतनी छोटी उम्र में यह तप, ये क्यों? भयस्थान भी दिखाए कि शिव को प्राप्त करके तुम क्या सुख पाओगी? मुस्कुराती हुई ये कन्याकुमारी, मेरे 'मानस' की कन्याकुमारी कहती हैं, मेरे गुरु के वचन को मैं छोड़नेवाली नहीं। मेरा घर बर्बाद हो जाये कि बसे, मुझे कोई परवाह नहीं। पद का एक अर्थ हम जैसों के लिए यही है एकनिष्ठा। एकनिष्ठ का अर्थ एक पैर से तप कर। माँ ने तो किया ही, ध्यान देना। शास्त्र की कथा को हम ठुकरा नहीं सकते। और माँ कर सकती है। जो संसार को उत्पन्न कर सकती हैं, पालन कर सकती हैं, विलय कर सकती हैं वह क्या नहीं कर सकती? हम भले दो पैर से खड़े रहें; चलो, हम भले चार पहियेवाली कार में घूमते रहें, चलो; हम एरप्लेन में घूमते रहें, चलो लेकिन गुरुवचन पर निष्ठा कभी न बदले तो हमारी तपस्या भी एक पैर की तपस्या है।

ये विवेकानंदजी की जो मूर्ति हैं उसमें भी आप देखेंगे कि उसका पैर आगे-पीछे, यानी ये स्थिर मूर्ति नहीं हैं, चलती मूर्ति है। ये निरतंर गतिशील का प्रतीक है। ठीक से देखें तो लगेगा कि यदि ध्यान में कोई देखे तो लगेगा कि अभी दूसरा पैर उठेगा, अभी आगे जाएगा। ये ऐसी अनुभूति हो सकती हैं। मुझे रोक पर की स्वच्छता भी बहुत अच्छी लगी; अंदर की पवित्रता तो है ही। सात्विकता तो है ही। एक संत पुरुष ने और माँ ने वहां तपस्या की हैं। और वो चरणचिह्न जो कन्याकुमारी का, सबसे महत्त्व का कोई उर्जावान स्थान मुझे लगा वहां, तो वो चरणचिह्न है जो माँ का चरण हैं। जो एक पैर से माँ खड़ी रही और चरण, गजब की बात हैं। ये पत्थर का पहाड़ नहीं है, साधना का पहाड़ हैं। ये ध्यान पर्वत हैं। ये कुंआरा पहाड़ हैं। अनटच माउन्टेन हैं ये। ये खड़क जो हैं।

तो ये अद्‌भुत वस्तु हैं। स्वामीजी में तीव्रता बहुत थी। एक तो यौवन था, तीव्रता भी, पढ़ाई-लिखाई बहुत थी। ठाकुर के साथ भी न जाने कितनी-कितनी जिद्द करता था! लेकिन मूल में तो बादशाह बैठा है ठाकुर। ठाकुर न हो तो कुछ नहीं। और मुझे अच्छा लगा कि एक ओर ठाकुर बिराजमान हैं और एक ओर माँ शारदाजी बिराजमान हैं। स्वामीजी की मूर्ति खड़ी है। और माँ-बाप ही तो बच्चे को खड़ा करते हैं। गुरु ही तो आश्रित को खड़ा करता हैं कि उत्तिष्ठत बेटा। ठाकुर तो बोल नहीं पाते। वो तो बिलकुल अनपढ़ गंवार रहे।

तो एक बहुत उर्जा से यहां ये श्री सी का मिलन तो है ही। हमारे गोविन्दजी ने कहा कि ये अरबी समुद्र है, बंगाल की खाडी हैं, हिन्द महासागर है। तीन दरियाओं का यहां मिलन तो हैं। लेकिन यहां असलियत तो तीन आध्यात्मिक सी है। एक माँ के तप की धारा। दूसरी स्वामीजी के त्याग की धारा। और तीसरी एक पहाड़ अथवा तो इर्द-गिर्द में रहे ये माँ की मूर्ति जो यहां मंदिर है माँ का ये मंदिर। ये तीसरी धारा है तितिक्षा। मेरी समझ में जो उभर रहा हैं कि त्याग, तप और तितिक्षा ये तीन धाराओं का यहां संगम हैं। और जब तक साधक में ये तीन धाराएं नहीं मिलती है, साधना अधूरी रह जाती है। फिर 'गीता' में जाना पड़ेगा कि कितने प्रकार के तप हैं? राजसी, तामसी, सात्विकी तप का जिक्र करती है। फिर त्याग की चर्चा करनी हैं तो भी 'गीता' में प्रवेश करना पड़ेगा। क्योंकि वो तीन प्रकार के त्याग की चर्चा भी 'गीता' ओलरेडी करती हैं। तितिक्षा का बहुत सरल अर्थ समझ में ये आया हैं कि आपमें सब कुछ सामर्थ्य हो; आप चाहें तो किसी के भी सवाल का जवाब दे सकते हो; आप चाहो तो किसी को भी ठीक से दिखा सकते हो; ये सब सामर्थ्य होते हुए भी मुस्कुराते हुए आप सब कुछ सह लें, उसी का नाम है तितिक्षा। और ये सबसे बड़ी करुणाभरी तितिक्षा माँ में होती है; मातृस्वरूप में हुआ करती हैं।

तो यहां तीन दिन बैठने के बाद स्वामीजी को लक्ष्य मिल गया और शिकागो की जो बात थी उसके लिए उसने निंणय कर लिया कि मैं जाउंगा। और मुझे स्वामीजी की बात करूं तब और भी आनंद हैं कि स्वामी विवेकानंदजी भी कभी वेदांत की शिक्षा की परम्परा में 'कैलास आश्रम' में ऋषिकेश में रहे हैं। स्वामी रामतीर्थ भी रहे हैं। मूल में तो कैलास है साहब! वहीं रहे। उसके लिखित स्तम्भ में स्वामीजी का पुण्यश्लोक नाम अंकित हैं। तो यहां एक जागरण हुआ था। मैं क्या करूं? कूद पड़े। तीन दिन के ध्यान में उसको लक्ष्य पाया और विश्व को कितनी

बड़ी देन प्राप्त हुई इस युवा संन्यासी से! जो मालिक सोया हुआ है ऐसी आत्मजागृति के लिए स्वामीजी ने बहुत काम किया।

गुर कें बचन प्रतीति न जेही।

सपने हुँ सुगम न सुख सिधि तेही।

भवानी की एकनिष्ठा वहां तक 'मानस' में मुखर हुई हैं। वो कहती हैं, हे सप्तऋषि, आप कहे वो नहीं, लेकिन स्वयं जिसको मैं पाना चाहती हूं, वो शिव आकर मुझे कहे कि मुझे ब्याहने की जिद्द छोड़ कन्या, मैं तुम्हे मिलूं वर के रूप में ये जिद्द छोड़ तो भी मैं माननेवाली नहीं। शिव कहे तो भी मैं माननेवाली नहीं। मैं गुरु की एकनिष्ठा हूं। अब मुश्किल ये होती है गुरुपरम्परा में कि गुरु आखिर कदम हैं; उसके बाद ईश्वर हैं। कई लोग ऐसा मानते हैं, खासकर कि गुरुपरम्परा वालें, खासकर कि मोरारिबापू। मैं किन-किन का दृष्टान्त दूं यार! कहां-कहां से लाउं? और मुझे अपना नाम लेने में कोई आपत्ति नहीं। आप कोई भी अर्थ करो, मुबारक! मुझे कोई लेना-देना नहीं। मैं गुरु के पद पर हरि को नहीं निहार सकता। गुरु, गुरु हैं। मेरे लिए राम साधन है; साध्य मेरा गुरु है। यस, ये मेरी व्यक्तिगत बात है। आप मेरी चाल मत चलना। इसका मतलब मैं ये नहीं कहूं कि गुरु के द्वारा ईश्वर के पास आया सकता है। बड़ा सरल मार्ग है ये। क्योंकि गुरु हैं आखिरी पायदान। उसके बाद जिस भवन में प्रवेश करना है वही तो परमधाम है। वहां से सीधी एन्ट्री हो जाती है। सरल पड़ेगा। कठिन पड़ेगा हरि को ओवरटेईक कर जाना; बड़ा कठिन हैं। मन तरंगे करेगा। हरि का अपराध कर रहा हैं, तेरा अशुभ होगा। और माया विपत्ति भी डालेगी। कुछ न कुछ होता रहेगा। माया बहुत परेशान करेगी। विपत्ति डालेगी कि साधक रुक जाये। साधक इतनी बड़ी छलांग न ले कि हरि को ही साधन बना दे।

एक पैर से खड़े रहकर तप करना कन्याकुमारी का अर्थ है ऐसी एकनिष्ठा जहां हरि भी पीछे रह जाता है। मेरी दृष्टि में मुकुट का मूल्य नहीं हैं, जितना पगड़ी का मूल्य है। चाहे तो त्रिभुवनदादा की पगड़ी हो; चाहे विवेकानंद की पगड़ी हो; चाहे शहीद भगतसिंह की पगड़ी हो; चाहे शिवाजी की पगड़ी हो; चाहे महाराणा प्रताप की पगड़ी हो; जलाराम बापा की पगड़ी हो। तो ये दोनों मार्ग हैं। या तो गुरु के द्वारा हरि को पाएं। लेकिन इसका मतलब दो मत समझना। गुरु की प्राप्ति का जिसका लक्ष्य है उसको पता लग जाता है कि यही हरि है। 'बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि।' और मानव के रूप में कोई मिल जाये ना तो ये सरल पड़ेगा। चतुर्भुज बड़ा महंगा पड़ता है यार! बड़ी मुश्किल हैं। मानव बनना सर्वोच्च उपलब्धि हैं। हम स्त्री हैं; हम पुरुष हैं। मानव कितने हैं? 'मानस' क्या काम करता हैं? 'मानस' हैं मानव बनने की एक प्रक्रिया, एक फोर्म्यूला। कहने का मेरा मतलब ये है कि दो मार्ग की बात है। या तो कोई साधक या तो कोई मानव गुरु के द्वारा पहुंचता है हरि तक। या तो किसी की मनीषा ऐसी हो जाती हैं कि वो गुरु को ही प्राप्त करने में सब कुछ प्राप्त कर लेता है। गुरु मिला, सब कुछ मिला।

तो मेरे भाई-बहन, ये है एकनिष्ठा। पार्वती का वचन है 'मानस' में कि शंकर भगवान एक बार नहीं, सौ बार मुझे कहे कि देवी, तू जिद्द छोड़, मेरे लिए तप मत कर। तो भी मेरे गुरु के बचन का मैं त्याग नहीं करूंगी। क्योंकि 'गुर कें बचन प्रतीति न जेही।' गुरुनिष्ठा के लिए ये बात है। मैंने मेरा अपना स्पष्ट अभिप्राय आपके सामने रख दिया कि मैं इस मार्ग पर चलनेवाला मार्गी हूं। और और साहब! गुरु ही नहीं मिला है, हरि तो मिला हुआ हैं। किसने कहा हरि नहीं मिला? 'ईश्वरः सर्वभूतानां हृदेशेऽर्जुन तिष्ठति।' ईश्वर तो मिला हुआ ही है। पहचान बाकी है; प्राप्ति तो है। पाना है गुरु। तो गुरुपद की बड़ी महिमा है। और गुरुपद में निष्ठा करके, एकनिष्ठ बनकर जो खड़ी रहे वह साधिका का नाम हैं कन्याकुमारी। और इस साधक का नाम जो नाम देना चाहो, आप स्वतंत्र है। फिर कोई ये अर्थ न करे कि माँ एक पैर नहीं खड़ी रही होगी। ये जगदम्बा है। कुछ भी कर सकती है। और चलो, मान लो कि कोई एक पैर से खड़ा भी रह जाये और एकनिष्ठा ना हो तो? तो क्या? इसलिए शंकराचार्य का अष्टक याद करना पड़ता है। 'ततः किं ततः किं ततः किं।' सब कुछ मिल जाये लेकिन गुरु के चरणकमल में यदि निष्ठा नहीं बनी तो क्या, क्या, क्या, क्या?

पांच वस्तु की निष्ठा को मेरी व्यासपीठ एक पैर का तप कहती है। पंचनिष्ठा हम में यदि है, मुश्किल है। और न हो तो कोई गिला भी नहीं, कोई ग्लानि भी मत करिए क्योंकि हम जीव हैं। हमारा सारथि बेहोश हैं। अंतरात्मा दब चुकी हैं। इच्छाएं, शुभ-अशुभ मनोरथों, बौद्धिक तर्क, कुसंग, सुसंग, इन सबकी फलश्रुतियां पथिक बनकर हमारे रथ पर सवार हो जाती हैं और रथ को इधर-उधर भटका देती हैं। ऐसी स्थिति में पंचनिष्ठा अत्यंत आवश्यक है। वो एक पैर की तपस्या हैं। एक; एक गुरुपद बस। कभी-कभी पहुंचे हुए गुरु की चेतना उसकी अनुपस्थिति में साधक को पुश करती हैं कि अब मैं विग्रह में तेरे पास नहीं हूं। पंचभौतिक रूप में तेरे पास नहीं हूं लेकिन कोई पुश करता है। कभी-कभी एक ही व्यक्ति में आश्रित को कई रूप दिखते हैं। कभी लगे कि ये बुद्ध लगता हैं; कभी लगे ये महावीर लगता है। कभी लगता है ये ठाकुर लगता है। कभी लगता है ये रमण लगता है। इसका मतलब है, वो मूल चेतनाएं हमें प्रेषित करती है। हम न बदले, ध्यान रखना। जीवन बहुत मूल्यवान है। प्रतिष्ठा पाने के लिए आप गुरु बदलते रहें एक बात और है लेकिन निष्ठा का मार्ग कुछ

भिन्न है। गुजराती में कहुं तो गुरुनी साथे जीव मळी जावो जोइये। ना मेरा जीव रहे और ना मेरे गुरु का जीव। एक जीव हो जाये। 'दो जिस्म मगर एक जान है हम। ओ मेरे सनम, ओ मेरे सनम।' यहां सनम माने परमात्मा या तो कोई भी लक्ष्य। कुछ भिन्नता बचे ही नहीं। जिसको शंकराचार्य ने अद्वैत कहा। और ध्यान रखना, सत्य कायम अद्वैत होता है। आचार्यों के इस सिद्धांत उसके जो मत है। ये व्यासपीठ के जो तीन प्रवाह है-सत्य, प्रेम, करुणा। तो मैं कहूंगा कि सत्य कायम अद्वैत है। सत्य दो नहीं होता। हमारे ऋषि ने कहा है, एकम् सत्। सत्य एक ही होता है। सत्य की तुलना हम सूर्य के साथ करते हैं। सत्य सूरज क्योंकि सूरज और निहारिका में कई सूरज है लेकिन हमारे जो निकट पड़ रहा है वो तो यही सूरज है। जो दो नहीं हैं, एक है।

सत्य अद्वैत होता है। और मेरे साधक भाई-बहन, ध्यान रखना, प्रेम कायम द्वैत होता है। प्रेम अद्वैत नहीं होता। प्रेम में दो चाहिए। एक सेवक, एक स्वामी; एक भाई, एक भाई; एक पति, एक पत्नी। पति-पत्नी में तो मुश्किल है! लेकिन दो चाहिए, दो चाहिए। एक मूर्ति, एक पूजारी। एक प्रिया, एक प्रियतम। दो चाहिए। मेरे साधक भाई-बहन, याद रखना, सत्य कायम अद्वैत है। प्रेम कायम द्वैत है। जिन लोगों ने प्रेम का मार्ग, भक्ति का मार्ग पकड़ा है वो दो में रहते हैं, रहना चाहिए। प्रेम का सिद्धांत है द्वैत। उसमें दो होने चाहिए। कथा प्रेम संवाद है। इसलिए तो मैं प्रेमयज्ञ करतां हूं। ये प्रेम संवाद है। इसमें वक्ता-श्रोता दोनों होना चाहिए। सत्य है अद्वैत। प्रेम है द्वैत। और करुणा है विशिष्टाद्वैत। भगवान रामानुज हो, शंकराचार्य हो, वल्लभ प्रभु हो। सबके अपने-अपने सिद्धांत है। करुणा विशिष्टाद्वैत है। करुणा करनेवाला एक होता है और अनुभव सब करते हैं।

तो मेरे भाई-बहन, हमारी चर्चा चल रही है पंचनिष्ठा। एक गुरु और गुरु का एक वचन। जो 'मानस' की कन्याकुमारी ने पकड़ लिया है। दूसरी निष्ठा है गुरुवचन। तीसरी निष्ठा का नाम है गुरुग्रन्थ। गुरु ने जो शास्त्र दिया वो ग्रन्थ बस। जैसे मेरे भगवान ने मुझे 'रामचरित मानस' दिया है। मेरे लिए ये सब कुछ है। और मुझे इसमें कौन-सी कमी लग रही है कि मैं औरों के आश्रय में जाउं? कौन कमी है? मैं कई कलाकारों के साथ बैठता हूं। कई कवियों के साथ बैठता हूं। कई विद्याधरों के साथ बैठता हूं। कई लोगों के साथ बैठता हूं। एन्जोय करता हूं। बहुत मौज करता हूं साहब! तो कई लोग ऐसा भी प्रचार करते हैं कि बापू हमारे पास बैठकर हमारी बातें सीखते हैं! मैं जाहिर में कई बार बोल रहा हूं और आज भी बोलूं कि मुझे कुछ सीखने का शेष हैं नहीं। मेरे लिए रामनाम पर्याप्त है।

ठाकुर रामकृष्ण देव ने कभी विवेकानंद को कहा था जब गले से पानी नहीं उतर रहा था ठाकुर को और विवेकानंद की आंखे डबडबा गई कि मेरे गुरु इतने पीड़ित है! खा नहीं सकते! और रोते हुए विवेकानंद को देखकर संकेत में ठाकुर परमहंस ने कहा, क्या बात है? 'ये हमसे नहीं सहा जाता। आप तो देह से भिन्न हो चुके हैं, आप की बात ओर है। लेकिन हम भी तो हम हैं। आप कुछ पी नहीं सकते।' बोले, 'अब मेरे कंठ से नहीं खा रहा हूं, आप सबके कंठ से मैं खा रहा हूं। क्या फ़र्क पड़ता है?' कई लोग ऐसी भ्रान्ति में है! कई लोग ऐसी भ्रान्ति फैला भी रहे हैं! बहुत चलता है दुनिया में! नोटबंदी हो सकती है, ये बंदी नहीं हो सकेगी कभी!

गुरुपद है एक निष्ठा। गुरुवचन दूसरी निष्ठा। गुरु ने वचन दे दिया तुझे ये करना है, बस बात खत्म! तीसरी निष्ठा है गुरुग्रन्थ। ये शीख भाइओं को पूछो, ग्रन्थसाहिब की क्या निष्ठा होती है? और चौथा है गुरुदत्त मंत्रनिष्ठा। गुरु ने जो मन्त्र दिया है, वो खेल-खेल में बोल दे कि तू ये कर, बस बात खत्म! ये मन्त्र है कि नाम है कि ये स्तोत्र है, ये फलां, उलझो मत। गुरु ने जो बोल दिया ये मन्त्र है। पांचवीं और अंतिम निष्ठा है गुरुस्थान की निष्ठा। जो हमारे गुरु का स्थान होता है। जो कन्याकुमारी में है। भगवान शिव ने सती का त्याग किया। सत्यासी हजार साल तक सती भवन में रही। हमारी पूजनीय कनकेश्वरी माँ का विचार है। उसने कहा था एक बार कि दूसरी स्त्री होती तो कहती कि मैं मेरे बाप के घर चली जाती हूं। लेकिन नहीं गई। शंकर ने जो कहा सती ने माना नहीं लेकिन गुरुस्थान की निष्ठा, वो सत्यासी हजार साल तक बैठी रही कि नहीं, मैं बैठुंगी। गुरुस्थान की निष्ठा।

पंचनिष्ठा से यात्रा करनेवाला साधक एकनिष्ठा के पैर पर खड़ा रहा तपस्या कर रहा है। भगवती कुन्याकुमारी ने एक पैर खड़े रहकर तप किया। 'मानस' की कन्याकुमारी का विवाह नारद करवाना चाहते हैं, देवगण चाहते हैं। नारद ने ये कौन वर मिलेगा ये सब कह दिया। क्योंकि भवानी के यहां पुत्र का जन्म हो कार्तिकेय का तो तारकासुर

एक पैर से खड़े रहकर तप करना कन्याकुमारी का अर्थ है ऐसी एकनिष्ठा जहां हरि भी पीछे रह जाता है। पार्वती का वचन है 'मानस' में कि शंकर भगवान एक बार नहीं, सौ बार मुझे कहे कि देवी, तू जिद्द छोड़, मेरे लिए तप मत कर। तो भी मेरे गुरु के बचन का मैं त्याग नहीं करूंगी। गुरुनिष्ठा के लिए ये बात है। ईश्वर तो मिला हुआ ही है। पहचान बाकी है; प्राप्ति तो है। पाना है गुरु। तो गुरुपद की बड़ी महिमा है। और गुरुपद में निष्ठा करके, एकनिष्ठ बनकर जो खड़ी रहे वह साधिका का नाम हैं कन्याकुमारी।

मरे। लेकिन यहां जो कन्याकुमारी है उसकी कथा ऐसी है कि बाणासुर का त्रास बढ़ गया। भयंकर ज़ुल्म बाणासुर ने किये। और बाणासुर कन्याकुमारी से ही मर सकता था। यदि पार्वती शिव से शादी करें तो बाणासुर मर जाए। इसलिए नारद ने यहां ऐसा किया कि शिव और पार्वती का विवाह होने ही न पाए जगमंगल के लिए। और ये भूमिका नारद ने निभाई विश्व मंगल के लिए। तो 'मानस' की कन्याकुमारी में नारद की भूमिका है मिलाने की। लक्ष्य तारकासुर से समाज मुक्त हो। बहुत सुंदर कथानक मिलते हैं। तो मूल ये जो स्थान है कन्याकुमारी, इसलिए 'मानस' का नौ दिवसीय ये प्रेमयज्ञ है 'मानस-कन्याकुमारी।'

वर्णानामर्थसंधानां रसानां छन्दसामपि।

मंगलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ।।

'रामचरितमानस' का सद्ग्रन्थ जो रूप है उसमें पहला सोपान जहां सात मन्त्रों में, सात श्लोकों में गोस्वामीजी ने मंगलाचरण किया। सबसे पहले वाणी और विनायक की वंदना की। शिव-पार्वती की, राम-सीता की, वाल्मीकि, हनुमानजी की, सब की वंदना करते हुए गोस्वामीजी ने कहा, मेरे अंत:करण के सुख के लिए मैं उसकी रचना कर रहा हूं। श्लोक को लोकहृदय में स्थापित करना था। श्लोक को लोक तक उतारना था। आखिरी व्यक्ति तक आध्यात्मिक अनुभव करवाना था। इसलिए गोस्वामीजी संस्कृत के प्रकांड विद्वान होते हुए भी लोकबोली में उतर आये। और पांच सोरठे में गोस्वामीजी प्राकृत भाषा में, एकदम लोकबोली में उतरे। जगद्गुरु आदि शंकराचार्य भगवान की पंचदेवों की पूजा की। जो सनातन धर्मावलम्बियों को आदेशात्मक सूचना थी बिल्कुल शांकरमत को तुलसी वैष्णवी ग्रन्थ में प्रथम स्थान देकर सेतुबन्ध कर रहे हैं। गणेश, दुर्गा, शिव, भगवान विष्णु और भास्कर-सूर्य पांचों की सनातन धर्मावलम्बियों को पूजा करनी चाहिए। इन पांचो का स्मरण किया और गुरुवंदना से 'रामचरितमानस' की कथा का आरम्भ होता है। पहला प्रकरण 'मानस' का गुरुवंदना, 'मानस- गुरुगीता।' कुछ पंक्तियां-

बंदउँ गुरु पद पदुम परागा।

सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।

श्री गुरु पद नख मनि गन जोती।

सुमिरत दिब्य दृष्टि हियं होती।।

गुरुचरणकमल की वंदना; गुरचरणकमल की पराग; गुरुचरणकमल की नखज्योति; गुरुचरणकमल की रज से अपनी आंखों को विवेकदृष्टि निर्मित कर के तुलसी रामकथा का आरम्भ करते हैं। और जब गुरुकृपा से, रजमात्र कृपा से साधक की आंख विवेकमय हो जाती है तो 'सर्वं खलु ईदं ब्रह्म', पूरा विश्व ब्रह्ममय हो जाता है। इसलिए गोस्वामीजी सबको ब्रह्ममय समझकर वंदना करते हैं। सबसे पहले पृथ्वी के देवता, ब्राह्मण देवाताओं की वंदना की। उसके बाद साधुसमाज की वंदना की। संतों की, साधुचरित्र की वंदना की। दुर्जनों की, खलों की, शठों की, निशिचरों की, देवों की, गंधर्वों की, यक्षों की, सबकी वंदना गोस्वामीजी ने की। और एक पंक्ति लिख दी जो आप सब जानते हैं-

सीय राममय सब जग जानी।

करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।

पूरे संसार को सीताराममय समझकर गोस्वामीजी जगत को करबद्ध प्रणाम करते हैं। फिर 'मानस' के पात्रों की वंदना। एक अर्थ में पात्रपरिचय, एक अर्थ में पात्रप्रणाम। सबसे पहेले माँ कौशल्या की वंदना की। फिर दशरथ सहित सभी रानियों की वंदना। महाराज जनकजी की वंदना। भरतजी की, लक्ष्मण, शत्रुध्न सबकी वंदना की। और बीच में-

महावीर बिनवउँ हनुमाना।

राम जासु जस आप बखाना।

श्री हनुमानजी महाराज की नितांत आवश्यक वंदना गोस्वामीजी ने की। पहले दिन की कथा को हम भूमिका करके वंदना प्रकरण में हनुमानजी तक की वंदना तक लिए चलते हैं। तो हनुमानजी की वंदना 'विनय' के पद की कुछ पंक्तियों से हम करलें; उसके बाद आज की कथा को विराम।

पवनतनय संतन हितकारी।

हृदय बिराजत अवध बिहारी।।

मंगल मूरति मारुत नंदन।

सकल अमंगल मूल निकंदन।।

बंदौ राम-लखन-बैदेही।

ये तुलसी के परम सनेही।।

ये बाबा के परम सनेही।।

ये बापू के परम सनेही।

इतना आनंद हो रहा है कि आज मेरे सामने तीन श्रोता खड़े-खड़े सुन रहे हैं। एक तो तिरुवल्लुवरम् खड़े-खड़े सुन रहे हैं। एक अंदर छिपकर विवेकानंदजी खड़े-खड़े सुन रहे हैं। और मेरी माँ एक पैर से सुन रही है साहब!

मंगल मूरति मारुत नंदन।

सकल अमंगल मूल निकंदन।।

अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं

दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।

सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं

रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि।।

मेरे लिए ये 'रामचरितमानस' कन्याकुमारी है

मैं आपके सामने कल कह रहा था कि हमारे पौराणिक ग्रंथों में एक चरण पर खड़े रहकर कई तपस्वियों ने तपस्या की है, जिसमें सर्वोपरी तपस्या माँ की है। कल जिसका पुण्यश्लोक नामस्मरण किया गया वो ध्रुवजी एक पैर खड़े रहकर तपस्या करते हैं। जमदग्नि के बारे में भी ऐसा उल्लेख प्राप्त है । मार्कण्डेयजी; एक उल्लेख मिला है बड़े उग्र तपस्वी दुर्वासाजी ने भी एक पैर से तपस्या की है। स्थान भेद है। ध्रुव ने उत्तर में की; माँ ने दक्षिण में की; मार्कण्डेय ने पश्चिम में की; जमदग्नि ने पूर्व में की; दुर्वासा ने मध्य भारत में की। सबकी बिलग-बिलग स्थली है। एक उल्लेख ये भी मिला कि एक पैर पर खड़े रहकर तपस्या हिमालय में, राक्षसताल में दशानन रावण ने भी की। और ये मत भूलियेगा ये एक पैर का अर्थ जो खासकर के व्यासपीठ के विचार में, एकनिष्ठा से, एकाग्रता से, एकचित्त से, एकमात्र शरणागति से सभी तपस्वियों ने अपने-अपने स्थान में इस तरह तपस्या की है। 'मानस' की कन्याकुमारी जो हिमालय की कन्या है उसको केन्द्र में रखते हुए हम ये चर्चा कर रहे हैं। ये पूरा प्रसंग जो पार्वती से जुड़ा हुआ। आप रामकथा के पाठक हैं, श्रोता हैं, स्वाध्याय करते हैं। कई भाई-बहन कथा भी करते हैं, सत्संग भी करते हैं; स्वागत है। आप परिचित हैं कि सती दक्षयज्ञ में शिव अपमान सहा नहीं गया तो जल गई। गोस्वामीजी प्रसंग बदल रहे हैं। फिर पूरा ये कन्याकुमारी का चरित्र ब्याह तक का जो है, ये पूरा कन्याकुमारी का चरित्र है।

सतीं मरत हरि सन बरु मागा। जनम जनम सिव पद अनुरागा।।

सती ने दक्षयज्ञ में जलते समय हरि से वरदान मांगा था कि जन्म-जन्म में मुझे शिव चरण में अनुराग हो। अग्नि के पास बैठना, अग्नि में समा जाना, अग्नि की साधना करना, इसका फल बहुधा अनुराग नहीं है। ध्यान देना, इसका फल है विराग। जो आदमी बहुत अग्नि की साधना करेगा उसमें वैराग्य आएगा। जो आदमी अग्नि में समा जाता है वो वैराग के

फोर्स में समा जाता है। जो आदमी अग्निहोत्री है उसमें भी वैराग्य की तीव्रता होती है। आप झूले पर बैठो तो आपमें विलास की प्रधानता क्रमशः बढ़ती है। याद रखना इस मनोविज्ञान को। झूले पर आप झूलो, ये विलास यहां बुरे अर्थ में नहीं है प्लीज़। झूले पर बैठना भी एक साधना है। आप कहेंगे कि ये नई साधना कहां से ले आये लेकिन मेरा सालों का अनुभव बोल रहा है। झूले पर बैठने से आदमी विलास का अनुभव करता है। झूला जो है उसमें हलचल चालू रहती है और हलचल के बीच में बैठकर अभ्यास बढ़ने से चिद्विलास की प्रक्रिया शुरू होती है। आंदोलनों के बीच में 'योगश्चित्त वृत्ति निरोधः।' ये बहुत कठिन सूत्र की ओर साधक जा सकता है। बालकृष्ण को हमने झूले में बिठाकर झुलाया है। जो भृकुटिमात्र से सारे संसार को झुलाता रहता है उसको हम पलने में झुलाते हैं उसके पीछे भी चिद्विलास का संस्कार पड़ा है। हां, शुरू-शुरू में आप झूले पर झुलोगे तो आपको रसिकता आएगी। कुछ गाना गुनगुनाने की इच्छा होगी। लेकिन हम ये ना भूलें कि हमें इससे आगे जाना है। कल के सूत्रों याद रखें, हमें जंगल से वन में जाना है। वन से उपवन में जाना है और उपवन से निज घर में जाना है। ये यात्रा है।

तो झूला भी एक साधन है यस, साधना है। रावण झूले पर बैठता है। रावण झूले पर बैठे-बैठे लंका में, अखाड़े में झूलता है और उसका अभिप्राय देते हुए गोस्वामीजी कहते हैं, वो इस रसिकता को डेवलप करते-करते महारस तक पहुंच जाता है। और तब जाकर प्रभु को लगा कि ये आदमी महारस में लीन हो जाएगा तो फिर अवतारकार्य रुक जाएगा। इसलिए महारस से उसको बाहर निकाला गया। तो झूले पर बैठने से क्रमशः साधक को चिद्विलास में प्रगति होती है। लेकिन यहां चर्चा है, सती यज्ञकुंड में जल गई। अग्नि के पास बैठने से व्यक्ति में विराग की भावनाएं बहुत आती हैं। और यहां लिखा है, सती ने अग्नि में जलते समय भगवान से विराग नहीं मांगा, 'जनम-जनम शिव पद अनुरागा।' तब मुझे बहुत प्रेरणा मिलती है कि सच्चा अनुराग विराग से ही पैदा होता है। जिसकी भूमिका विराग नहीं है, वो अनुराग नकली फूल है; प्लास्टिक के फ्लावर है। उसमें खुश्बू नहीं है। जिसमें भी अनुराग का फूल खिला है इस संसार में उसके मूल में वैराग्य का अग्नि है। तो जो पूरा इतिहास है 'मानस' की कन्याकुमारी का, उसमें अनुराग की मांग की है। मैं तो ये विलास और विराग की चर्चा आपको कह रहा हूं।

यहां मुझे आपसे बात करने में ज्यादा अच्छा लग रहा है। खबर नहीं है क्यों? मैं कुछ बातें ओर कहूंगा आपको। मैं पांच जगह बैठता हूं कुल मिलाकर मेरा आसन पांच जगह है। मैं अपने बारे में जब सोचता हूं, मैं पांच जगह बैठनेवाला आदमी हूं। एक तो व्यासपीठ पर बैठता हूं। व्यासपीठ के उपर बैठता हूं मीन्स गुरु की गोद में बैठता हूं। ये गादी तो है ही नहीं, गुरु की गोद है। तो मेरी ये बैठक मेरी जन्म-जन्म की बैठक है, यस। और खबर नहीं, कितने जन्म तक रहेगी? तो एक तो मैं व्यासपीठ पर बैठता हूं। दूसरा, मैं अग्नि के पास बहुत बैठता हूं। मुझे अच्छा लगता है। ऋग्वेद का प्रथम मन्त्र अग्नि से ही शुरू होता है। अग्नि पर बैठता हूं। तीसरा, झूले पर बैठता हूं। चौथा, ठाकुरजी को अभिषेक करूं, पूजा करूं, 'मानस' का पाठ करूं, तब मैं 'मानस' के समीप बैठता हूं। और पांचवां और बाकी के समय में आपके साथ बैठता हूं। पंचपीठ है तलगजरडा की। पंचपीठ है ये। और इसका वरदान बहुत प्राप्त हो रहा है, बहुत!

तो मेरी मूल बात है, अग्नि के पास बैठना वैराग का संवर्धन है। अग्नि सिखाता है उधर हाथ मत डाल। अग्नि सिखाता है ऐसे-तैसे मत बैठ। तेरा वस्त्र तो रह जाएगा, वृत्ति जल जाएगी। वस्त्र तो संभालकर बैठते हैं कि कहीं अंगार न लगे लेकिन वृत्ति का क्या? बहुत वैराग्य सिखाता है अग्नि। तुलसी बड़े क्रांतिकारी महापुरुष हैं। इसलिए कहते हैं कि सती अग्नि के पास गई, अग्नि में डूब गई, अग्निमय हो गई और मांगा अनुराग। राम प्रेम मूर्ति है। 'रामहि केवल प्रेम पिआरा।' ये प्रेम निकला कहां से? अग्नि से। अग्निकुंड से चरु निकला। राम का मूल जो है वो तो अग्नि से ही। रामरूपी अनुराग भी प्रगट हुआ विराग अग्नि से। जो प्रेम वैराग्य की कोख से पैदा नहीं होता वो दो कोड़ी का होता है। वो फरेब है, धोखा हैं।

तो भवानी ने मांगा अनुराग। सती दूसरे जन्म में कन्या के रूप में, कुमारी के रूप में हिमालय के घर प्रकट हुई। गोस्वामीजी कहते हैं, उमा पर्वतराज के घर आई तो सकल लोक में सुख समृद्धि छाने लगी। बड़े-बड़े महात्मा आने लगे। सबसे बड़ी वात ये हुई कि सती हिमालय के घर में प्रकट हुई। उसके बाद बिना बुलाये ऋषि-मुनि-महात्मा सब हिमालय आने लगे। हिमालय सबको उचित स्थान देने लगे और सब हिमालय में आश्रम बनाकर निवास करने लगे। हिमालय ओर समृद्ध हो गया। व्यासपीठ ने कभी आपसे बातें कही है कि जब हमारे जीवन में सच्ची श्रद्धा प्रकट हो जाती है तो संतों को बुलाया नहीं जाता, अपने आप आ जाते हैं। जब श्रद्धा प्रकट हो जाये; कहो भवानी जैसी एकनिष्ठा प्रगट हो जाये। खबर फैल गई कि हिमालय के घर पुत्री जन्म हुआ है। कौतुक समझकर

नारदजी धूमते हुए वीणावादन करते-करते हिमालय पधारते हैं। नारदजी को आते देख हिमालय और महारानी मैना बहुत प्रसन्न हुए। नारदजी की पूजा की। चरण प्रक्षालन किया। व्यक्तिपूजा की मूढ़ता न आ जाये तो किसी के चरण धोने की बड़ी महिमा है। हमारी पद्धतियां बहुत प्यारी और उत्तम हैं। लेकिन व्यक्तिपूजा और मूढ़ता आने के कारण फिर उसमें दोष आ गए। उसमें फिर अनर्थ भी पैदा हुए! कलिप्रभाव काम कर रहा है। कई लोग जबरदस्ती पैर धुलवाते हैं! मैंने देखा है, कई लोग जबरदस्ती दंडवत् करते-करवाते हैं! तो हिमालय ने नारद के चरणों का प्रक्षालन किया और दो हाथ जोड़ करके हिमालय प्रार्थना करता है नारद से, हे त्रिकालज्ञ, हे सर्वज्ञ, हर जगह आपकी गति है। मेरी एक कन्या जो है उसके हाथ की रेखा देखकर उसके गुण दोष बताइए। नारद ने बोलना शुरू किया, हे शैलराज, आपकी बेटी कैसी है?

सब लच्छन संपन्न कुमारी।
होइहि संतत पियहि पिआरी।।
जौं तपु करै कुमारि तुम्हारी।
भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी।।

तो जिस पंक्ति के आधार पर 'मानस-कन्याकुमारी' का संवाद हम कर रहे हैं। यहां लिखा है नारद के वचन कि हिमालय, आपकी बेटी सब लक्षण सम्पन्न है। सब लक्षण माने कितने लक्षण? हमारे यहां बत्तीस लक्षण की बातें आती है। कोई आदमी बत्तीस लक्षणा है। कुमारी कन्या का पांच लक्षण। कोई भी कुमारी कन्या ये तो परम्बा है। जो बाणासुर मर जाए इसलिए कुंआरी रही। एक पैर से तप करती रही कि समाज की व्यथा दूर हो तो मैं ऐसे ही रहूं। ये जो माँ यहां खड़ी है एक पैर से। कोई भी कुंआरी कन्या जो है सांसारिक स्तर पर हम न देख पाएं क्योंकि ये हमारी दृष्टि भी नहीं है; इतनी ऊंचाई भी नहीं है। लेकिन पांच विद्या जिसमें हो वो कन्याकुमारी है। हमारे यहां 'कुमार' और 'कुमारी' दो शब्द है। युवक के लिए कुमार है और युवती के लिए कुमारी है। 'मानस' में ये कुमार-कुमारी दोनों शब्द आपको अत्र-तत्र मिलेंगे। जानकी को अवनि कुमारी कहा है; विदेह कुमारी कहा है। लक्ष्मणजी को कुमार कहा है। 'रामचरितमानस' में एक गिनती के मुताबिक 'कन्या' शब्द आठ बार आया जो मुझे एक गिनती बताई गई है उसमें। हमारे बडौदावाले हरीशभाई गिनती करके भेज देते है।

पांच प्रकार की विद्या जिसमें हो वह कन्याकुमारी है। अब हमारे घर में एक लड़की बेटी है, कन्या है, बेटी है उसमें ये पांच विद्या यदि आप देख पाएं तो, न देख पाएं तो भी उसको कन्याकुमारी समझो प्लीज़। बहन-बेटियों को मेरी प्रार्थना, आपमें पांच विद्या है। हर घर में कन्याकुमारी है। पांच विद्या; यहां सब लच्छन संपन्न कुमारी के बारे में पांच विद्या। एक, ब्रह्मविद्या। ये माँ में लागू होता है सब और यदि हमारी बहन-बेटियों में भी ये थोड़ा उतरे; बहन-बेटियों में दबा तो हैं, निकले। दूसरी वेदविद्या। तीसरी, भगवान समस्त विद्याओं में अध्यात्मविद्या मैं हूं, ऐसा कहकर 'गीता' में प्रतिपादन करते हैं, अध्यात्मविद्या। ये तीसरी। चौथी योगविद्या पतंजलि की। पांचवीं लोकविद्या। जो लोग जानते नहीं है वो लोकविद्या को नकार देता है लेकिन इसको पता नहीं है ये लोग बालमंदिर के छात्र हैं! आप हैरान होंगे, ये सभी विद्याओं का स्थान बताया गया उसमें लोकविद्या की महिमा क्या है? आपको कहूं। अवसर मिला है। ब्रह्मविद्या का स्थान मस्तिष्क है। यहां से ब्रह्मरंध्र तक यहां तक का जो भाग है वो ब्रह्मविद्या का निवास माना गया है। सार्वभौम रूप में ब्रह्मविद्या का निवासस्थान है ये भाल। ब्रह्मविद्या यहां रहती है। वेदविद्या कंठ में रहती है। विशेष साधक को कोई दूसरी जगह ये विद्या का स्थान प्राप्त हो जाये तो ये अपवाद है। ध्यान देना, वेदविद्या का स्थान कंठ माना गया। योगविद्या का स्थान माना गया है चित्त। मानवी का चित्त ये योगविद्या का स्थान माना गया है। अध्यात्मविद्या का स्थान है हृदय। और साहब, प्राउड लेने जैसी बात है, लोकविद्या का स्थान है नाभि। मूल स्थान है नाभि। मुझे कहने में बड़ी प्रसन्नता है कि रावण में पांचों विद्या है। इसलिए रावण को भी 'कुमार' शब्द से एक बार पुकारा गया कि हे कुमार, ये मार्ग छोड़ दे। तुझमें पांचों विद्या है। ये संकेत था।

ब्रह्मविद्या मस्तिष्क में रहती है। माँ कन्याकुमारी का मस्तिष्क ये ब्रह्मविद्या का प्रतीक है। वहां ब्रह्मविद्या है। ब्रह्मविद्या का फल भी बताया गया है। ब्रह्मविद्या का फल है जीव को धीरे-धीरे मैं ब्रह्म हूं उसकी अनुभूति कराना ब्रह्मविद्या का प्रधान कार्य है। ब्रह्मविद्या का एकमात्र फल है जीव को ब्रह्म की अनुभूति कि मैं वो ही हूं। वेदविद्या का फल है जीवन का, ब्रह्मांड का रहस्य जानने में मदद मिलती है। उसको कहते हैं वेदविद्या। अपने पिंड के रहस्य समझ में आने लगे और ब्रह्मांड के रहस्य समझ में आने लगे ये है फल वेदविद्या का। योगविद्या का फल है चित्तवृत्ति निरोध; मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य।

अध्यात्मविद्या हृदय में रहती है और मैं उसका ये मेरी जिम्मादारी से अर्थ करना चाहता हूं कि अध्यात्मविद्या का फल मेरी, मोरारिबापू की दृष्टि में सत्य, प्रेम और करुणा

है। उसका शास्त्रों में कोई ओर फल आपको मिल जाये तो ये आप रखियेगा लेकिन मुझे मेरा अर्थ डालना है। सत्य अध्यात्मविद्या का परिणाम है। प्रेम अध्यात्मविद्या का फल है। और करुणा अध्यात्मविद्या का स्वाभाविक फल है। उसका स्थान है हृदय। लोकविद्या का स्थान है नाभि और उसका फल है धीरे-धीर सभी विद्या की ओर साधक को अग्रसर करना। एक दोहे से शुरू करो तो देवालय तक एक उच्च शिखर तक पहुंचा दे। ये है लोकविद्या का फल।

कन्याकुमारी में पांचों विद्या है। माँ कन्याकुमारी का मस्तिष्क है ब्रह्मविद्या। माँ कन्याकुमारी का कंठ है वेदविद्या। माँ का चित्त योगविद्या का प्रतीक है। कन्याकुमारी माँ का हृदय ये अध्यात्मविद्या का प्रतीक है और कन्याकुमारी माँ का नाभि प्रदेश ये लोकविद्या का स्थान है।

तो कई प्रकार के लक्षण माँ में है। सभी सुलक्षण है माँ में, लेकिन मेरी दृष्टि में पंचविद्या से आपूर्त माँ है इसलिए 'लच्छन' शब्द यहां एक विशेष रूप में आया है। और जो माँ की साधना करेगा, कन्याकुमारी की साधना करेगा; ये पराम्बा की साधना करेगा उसको पांचों विद्या क्रमशः मिलती हैं। जिसको लोकविद्या, योगविद्या, ब्रह्मविद्या, वेदविद्या, अध्यात्मविद्या पाना है। माँ की उपासना करो। जगदम्बा की उपासना। पांचों विद्या अर्जित हो जाती है।

मेरे लिए ये 'रामचरित मानस' कन्याकुमारी है। मैं इसका स्वामी हूं, कोई नहीं कह पाता। हजारों आये हैं, आये होंगे, आते रहेंगे। मोरारिबापू भी कितने जन्म लेंगे लेकिन ये कह नहीं पायेगा कि मैं उसका मालिक बन गया। क्योंकि ये है ('मानस') मेरी कन्याकुमारी। और इस कन्याकुमारी की जो साधना करेगा उसमें ब्रह्मविद्या आएगी। ये कन्याकुमारी की जो साधना करेगा उसमें वेदविद्या आएगी। ये कन्याकुमारी की जो साधना करेगा उसमें अध्यात्मविद्या, उसमें योगविद्या और उसमें लोकविद्या आएगी। लोकबोली का ये शास्त्र, ('मानस')ये कन्याकुमारी है मेरी दृष्टि में। मैं कन्याकुमारी का उपासक हूं। और ये पांचों विद्या उसका कोई पति नहीं हो सकता।

जिसको पांचों विद्या का अनुशीलन करना है वो माँ कन्याकुमारी की आराधना करे। उसकी उपासना करे और हमारे लिए ये ('मानस') कन्याकुमारी है। कोई दावा नहीं कर सकता कि ब्रह्मविद्या का मैं मालिक हूं। योगविद्या का मैं धनी हूं। लोकविद्या का मैं स्वामी हूं। तो पांचों विद्या जिसमें समाहित है वो परमात्मा का प्यारा हो जाएगा। परमात्मा उससे प्रेम करेगा। तो हिमाचल को कहा, आपकी बेटी सभी लक्षणों से सम्पन्न है। पति को वो बहुत प्यारी होगी। उसका सुहाग अखंड रहेगा। वो शाश्वत हो जाएगा। उसकी मांग कभी उजड़ेगी नहीं, जो इस कन्या का आश्रय करेगा, उसकी उपासना करेगा। स्त्री समाज आपकी बेटी का आश्रय करेगा तो पतिव्रत की असिधारा पर चल पायेगा। नारद ने नामकरण समय ऐसी कुछ बात कही कि उसका नाम उमा है, अम्बिका है, भवानी है। सब अच्छे-अच्छे लक्षण बताने के बाद नारदजी कथा के क्रम में कहते हैं कि आपकी बेटी की हस्तरेखा में कुछ लोगों को अवगुण लगेगा, ऐसे कुछ अंक है । नारदजी कहते हैं, आपकी बेटी वैसे तो कन्याकुमारी है, अभी कन्या है। लेकिन यदि इसकी शादी होगी तो ऐसे वर से होगी-

अगुन अमान मातु पितु हीना।
उदासीन सब संसय छीना।।

कुछ लक्षण जो वर के बताये, श्रेष्ठ लक्षण बताये। जो दुनिया की दृष्टि में अवगुण है लेकिन विरल है। सर्वसामान्य नहीं है। पहला लक्षण बताया कि वो अगुण होगा। अगुण का एक सीधा अर्थ है कि जिसमें कोइ गुण ही नहीं, गुणरहित है। दूसरा है निर्गुण माने उसका पति विग्रहधारी नहीं होगा, निराकार होगा। ये भी अर्थ है क्योंकि शिव की ओर संकेत है। क्योंकि गुण का एक अर्थ होता है रस्सी। संस्कृत में गुण माने रस्सी। और रस्सी का काम है बांधना। शिव ये है जो किसी भी गुण में, बंधन में नहीं रहते। ना सतोगुण, ना तमोगुण, ना रजोगुण। अथवा तो शिव ऐसी करुणामूर्ति हैं, भगवान राम के इतने प्रेमी हैं कि उसका प्रेम नारद के भक्तिसूत्र के मुताबिक गुणरहितं, कामनारहितं, आदि-आदि जो छः लक्षण नारद ने भक्तिसूत्र में दिए। अमान; आपकी बेटी को पति ऐसा मिलेगा जो अगुण है, अमान है, निर्मानी है। उसको सम्मान, बहुमान की भूख नहीं है, निर्मानी है। कोई अपमान करे, कोई सम्मान दे, कोई फ़र्क नहीं। आपकी बेटी को कोई ऐसा पति मिलेगा कि उसके कोई माँ-बाप नहीं होंगे। बिना माँ-बाप का होगा वो। उदासीन होगा, शत्रु-मित्र, मान-अपमान सभी द्वंद्वों से पर एक बिलग परिस्थिति रखनेवाला उदासीन होगा। जिसका तमाम संशय समाप्त हो गया हैं, ऐसा पुरुष आपकी बेटी को पति रूप में मिले। आपकी बेटी को पति जो मिलेगा वो योगी होगा। और बिल्कुल जिसके मन में कोई कामना नहीं है। निष्काम जो है शिव, उसका संकेत। नग्न रहता होगा, दिगंबरी में रहता होगा। अमंगल भेष, जो मंगल नहीं माना जाये ऐसे आभूषण, ऐसा भस्म वगैरह अमंगल।

माता-पिता की आँख में आंसू आ गए और भवानी की आँख में भी आंसू है! दशा तीनों की एक। माँ-बाप भी रो रहे हैं और कन्या भी रो रही है। लेकिन माता-पिता को पीड़ा के आंसू है कि इतनी सुंदर कन्या और ऐसे पति मिले! और पार्वती के आंसू खुशी के है कि बाबा ने जो-जो वर के दोष बताये हैं वो तो भगवान महादेव के सिवा किसी के पास है ही नहीं। और शिव मिले तो फिर कहना क्या? माता-पिता दुःखी हो गये तब नारद जी ने कहा कि हिमालय, विधाता ने जो लेख लिखें हैं उसको देव, दनुज, नर, नाग, मुनि कोई मिटा नहीं सकता। व्यासपीठ ऐसा मानती है कि देव नहीं मिटा सकते जो विधाता ने लिखा है लेकिन महादेव मिटा सकते हैं। तुम्हारी बेटी तप करे। एक कन्याकुमारी तपस्विनी बनकर यदि तप करे तो प्रारब्ध को भगवान महादेव मिटा देंगे। नारदजी ने ये सलाह दी और नारदजी वहीं से विदा होते हैं। सुबह में भवानी ने कहा, माँ! मुझे एक सपना आया। सपने में एक सुंदर गौर शरीरधारी विप्र ने मुझे दर्शन दिए और उसने कहा कि तुम तप करो। और फिर यहां तप की महिमा का उल्लेख तीन-चार पंक्ति में गोस्वामीजी ने किया। तप के बल से ब्रह्मा प्रपंच का निर्माण करता है। तप के बल से विष्णु परिपालन करते हैं। तप के बल से शिव समय पर उसका निर्वाण कर देते हैं। तप के बल से ही शेष धरती को अपने सिर पर धारण करते हैं। पूरी सृष्टि तप के आधार पर है। विना परिश्रम कुछ निर्माण नहीं होता। बिना परिश्रम किसी का पालन-पोषण नहीं होता। और बिना परिश्रम निर्वाण की उपलब्धि भी नहीं होती। उसी संकल्प के साथ माँ कन्याकुमारी ने तपस्या की साहिब! आगे का कुछ संवाद हम कल करेंगे। थोड़ा कथाक्रम क्रमशः आगे बढाऊं।

एक श्रोता ने प्रश्न पूछा है, 'हम अपने सद्गुरु में विलीन हो चुके हैं। उसके लक्षण क्या होते हैं?' लक्षण चार, विलीन हो गए बुद्धपुरुष में उसके चार लक्षण। पहला लक्षण, हमारे पासे हमारा मन ना रहे। हमारे कोई विचार नहीं। कृष्ण है बुद्धपुरुष। कृष्ण है जगद्गुरु। कृष्ण है परम परमात्मा। उसने कहा, आश्रित, तू तेरा मन मुझ में डुबों दे। जीव में जीव लगा दो। जब हमें अपना मन न रहे; अपना कोई विचार न रहे। हमारी बुद्धि न रहे; कोई तर्क न बचे। बस, दाता तेरा निर्णय । हमारी दशा क्या है? हम को पता नहीं है और दूसरे की बात माननी नहीं! हमारी कोई बुद्धि नहीं, दे दी तुम्हें। हमारा कोई चित्त नहीं बचा। और हममें अब अहंकार जैसा कुछ नहीं है, न कोई हमारा अहंकार। चारों चीज नाममात्र भी हम में न रहे। कुछ बचे ना। गुरु तो अष्टमूर्ति है। मैंने कभी 'रुद्राष्टक' की कथा में कहा था, गुरु अष्टमूर्ति है। गुरु के आठ रूप है बाप! इसमें गुरु का एक रूप मृत्यु भी है। गुरु मृत्यु है; मार देता हैं।

दूसरा पूछा है, 'खुद में निष्ठा है कि नहीं, इसका पता कैसे किया जाये? निष्ठा डगमगानी नहीं चाहिए लेकिन फिर भी अगर ऐसा होना महसूस हो तो शरणागत को क्या करना चाहिए?'दो काम, मुनि का मौन रखो और ऋषि का व्यक्तव्य। जब ऐसी स्थिति हो तो मौन मुनि की तरह रखो। और बोलना पड़े तो ऋषि का व्यक्तव्य करो। तो धीरे-धीरे इसमें आगे बढ़ सकते हैं। तभी निष्ठा का परिचय विशेष हो सकता है। ऐसा कहना जरा भी अतिशयोक्ति नहीं है व्यासपीठ के लिए।

कल कथा के वंदना प्रकरण में हमने श्री हनुमानजी महाराज की वंदना की। उसके बाद भगवान के सखाओं की वंदना हुई और फिर सीताराम जी की वंदना हुई। पहले माँ जानकी की वंदना। उसके बाद भगवान की वंदना हुई और फिर गोस्वामीजी ने कहा कि ये लीलाक्षेत्र के लिए दो है, तत्त्वतः वाणी और अर्थ के मुताबिक जल और उसके तरंग के मुताबिक है तो एक ही । ऐसे सीता-राम एक ही ब्रह्म है। सीता-रामजी की वंदना की और फिर आप जानते हैं कि पूरा प्रकरण नाम महाराज की वंदना का लिखा। तो बहत्तर पंक्तियों में रामनाम की वंदना और रामनाम की महिमा का गायन किया। गोस्वामीजी ने नव दोहे में नाम महिमा अंकित की है। और आखिर में गोस्वामीजी कहते हैं कि नाम की महिमा कहां तक गाऊं? स्वयं राम भी अपने नाम की महिमा कहने में असमर्थ है।

मैरे लिए ये 'रामचरितमानस' कन्याकुमारी है। मैं इसका स्वामी हूं, कोई नहीं कह पाता। हजारों आये हैं, आये होंगे, आते रहेंगे। मौरारिबापू भी कितने जन्म लेंगे लेकिन ये कह नहीं पायेगा कि मैं उसका मालिक बन गया। क्योंकि ये 'मानस' है मैरी कन्याकुमारी। और इस कन्याकुमारी की जो साधना करेगा उसमें ब्रह्मविद्या आएगी। ये कन्याकुमारी की जो साधना करेगा उसमें वेदविद्या आएगी। ये कन्याकुमारी की जो साधना करेगा उसमें अध्यात्मविद्या, योगविद्या और लोकविद्या आएगी। लोकबोली का ये शास्त्र 'मानस' ये कन्याकुमारी है मैरी दृष्टि में। मैं कन्याकुमारी का उपासक हूं।

भाय कुभाय अनख आलसहू।
नाम जपत मंगल दिसि दसहू।।

बहुत मुक्तता गोस्वामीजी ने प्रदान कर दी कि भाव से, अभाव से, प्रमाद से अथवा तो दुर्मन से भी चलो, लेकिन प्रभु का नाम लेने से दसों दिशाएं मंगल हो जाएगी। तो नाम का आश्रय खूब करना। चाहे कृष्ण, राम, शिव, दुर्गा, अल्लाह, ईश्वर, जिसस जो नाम लेना हो; क्या फ़र्क पड़ता है? और कितनी छूट कि किसी भी वृत्ति से लो नाम अपना काम करेगा, कभी न कभी। नाम की मात्रा बढ़ते-बढ़ते ही संस्कार बदलने लगते हैं ऐसा साधकों का अनुभव है।

'रामचरितमानस' का प्रागट्य कैसे हुआ उसकी चर्चा तुलसी ने उठाई और गोस्वामीजी कहते हैं, सबसे पहले रामकथा-'रामचरितमानस' का सर्जन भगवान महादेव ने किया। रचना करते अपने मानस में माने हृदय में रखा। नाम रखा 'रामचरितमानस'। योग्य समय पाकर पार्वती को सुनाया। वो ही रामकथा फिर कागभुशुंडिजी को मिली। उसने गरुड को सुनाया। फिर वही कथा याज्ञवल्क्य पास धरा पर बिलकुल भूमि पर आई। उसने भरद्वाजजी के सामने कथा का गायन किया। और गोस्वामीजी कहते हैं, मैंने इस कथा को गुरु के स्थान में बचपन में बहुत सुनी। उस समय मेरा बचपना था यानी बुद्धि नादान थी तो रामकथा मेरी समझ में नहीं आई। कृपालु गुरु ने बार-बार सुनाई ओर थोड़ी समझ में बैठी तब मैंने निर्णय किया, मेरे मन को बोध हो इसलिए मैं उसको भाषाबद्ध करूं। इस का सीधा-सा अभिप्राय हर वक्त व्यासपीठ से कहा जा रहा है कि भगवान की कथा तुलसी की तरह हमें और आपको बार-बार सुननी पड़ेगी और तब जाकर कभी कोई ऐसी पल आएगी कि समझ में बात वैठ आती है। लोग तर्क भी करते हैं कि बार-बार सुनने से क्या फायदा? वो ही की वो ही कथा! कथा वो ही की वो ही नहीं रहती साहब! कथा रोज नई होती है। गंगा की धारा रोज नई होती है। सूरज रोज नूतन लगता है। फूल रोज नया लगता है। ऐसे भगवान की कथा नित नूतन होती है, ऐसा गान से मेरा भी अनुभव है। शायद सुनते-सुनते आपका भी अनुभव है। तो बार-बार सुनना पड़ेगा। तो गुरु ने बार-बार सुनाई। तुलसी ने भाषाबद्ध करने का संकल्प लिया और रामकथा का संपादन किया। एक रूपक बनाया, चार घाट बनाये। एक घाट ज्ञान का, जहां शिव पार्वती को कथा सुनाये। एक घाट उपासना का जहां भुशुंडि गरुड को कथा सुनाये। एक घाट कर्म का जहां याज्ञवल्क्य भरद्वाजजी को सुनाये। और एक नितांत शरणागति का घाट जहां तुलसी अपने मन को कथा सुनाते हैं।

तो तुलसी शरणागति के घाट से रामकथा का आरम्भ करते हुए हमें कर्म के घाट पर तीर्थराज प्रयाग लिए चलते हैं। मेरी समझ ऐसी बनी है 'मानस' गाते-गाते कि शरणागति के बाद जो पुरुषार्थ शुरू होता है वो अद्वैत होता है। बिना शरणागति पुरुषार्थ अहंकारग्रस्त हो जाता है। किसी के चरण में एक बार समर्पित होने के बाद उसके आशीर्वाद से जो पुरुषार्थ हमारा चलता है, जो कर्म हमारा चलता है वो कुछ अद्वैत होता है। विवेकानंदजी जब विश्व धर्मसभा में बोले, तो किसी विदेशी फोटोग्राफर ने उसकी एक तस्वीर खींची थी तो कहते हैं कि लगता था कि कोई पीछे खड़ा है, विवेकानंदजी का वक्तव्य किसी की छाया में हुआ है । पूरी दुनिया में उसका सन्देश गया। तो पीछे एक अद्वैत शरणागति की छाया अज्ञात रूप में; उसके द्वारा उसका कर्म पता चला, पूरा मिशन चला और सेवा का मार्ग लिया।

तो मेरे भाई-बहन, कर्म के घाट पर तुलसी हमें प्रयाग में लिए चलते हैं। तीर्थराज प्रयाग में महर्षि भरद्वाजजी का आश्रम। एक बार महाकुंभ हुआ। कल्पवास कर के सब लोग विदा होने लगे। आखिर में भरद्वाजजी के आश्रम से परम विवेकी याज्ञवल्क्य महाराज ने विदा मांगी तब भरद्वाजजी ने विनती की कि बाबा, मेरी एक जिज्ञासा है। प्रभु, मुझे बताईए रामतत्त्व क्या है? एक राम जिसका उपनिषद गुणगान गाते हैं। रामनाम जो भगवान महादेव अविनाशी होते हुए भी निरंतर जपते हैं। और एक राम तो दशरथजी के पुत्र जनकपुर में ब्याह, फिर वनवास, आदि-आदि। मेरे मन में दुविधा है कि ये रामतत्त्व है क्या? मुस्कुराकर के याज्ञवल्क्य बोले कि भरद्वाजजी, आपको राम की प्रभुता का पूरा परिचय है। मूढ़ आदमी की तरह मुझे प्रश्न पूछ रहे हैं क्योंकि आप राम के गूढ़ रहस्य की कथा सुनना चाहते हो। आप जैसे समर्पित श्रोता मिल जाये तो मैं जरूर रामकथा गाउंगा। भरद्वाजजी के सामने याज्ञवल्क्यजी प्रसन्नचित्त से कथा का आरंभ करते हैं। दो पंक्ति में 'मानस' की महिमा का गायन किया और याज्ञवल्क्य भरद्वाजजी के सामने शिवचरित्र से कथा का आरंभ करते हैं। कथा पूछी गई राम की, आरंभ किया शिवकथा से। तो अब गोस्वामीजी मानो शिवपुराण शुरू कर रहे हैं रामकथा के माध्यम से। शिवकथा से रामकथा का आरंभ होता है। एक बार शिव और दक्षकन्या सती कथा सुनने के लिए कुम्भज ऋषि के पास आते हैं। वो पूरा कथानक याज्ञवल्क्यजी भरद्वाजजी को सुनाते हैं। उसकी चर्चा कुछ हम कल करेंगें।

बुद्धपुरुष का एक सबसे बड़ा लक्षण होता है समता

नारदजी के वचन है कि हिमालय, आपकी ये कन्याकुमारी सभी लक्षणों से संपन्न है। लेकिन नारद ने सभी लक्षणों से संपन्न कहकर एक विशिष्ट लक्षण की ओर संकेत कर दिया। सब लक्षण यदि हो और ये लक्षण न हो, तो ये लक्षण इतना उपयोगी नहीं। एक कन्या में सब लक्षण हो, परिवार चाहेगा, राष्ट्र चाहेगा, विश्व चाहेगा लेकिन अत्यंत आवश्यक जो लक्षण है वो है नारद के वचन में, आपकी कन्या निरंतर पतिप्रिया होगी। ये सर्वोत्तम लक्षण है कन्या का। जो अपने पति को निरंतर प्रिय हो। सभी लक्षण हो; बत्तीस लक्षण हो; चौसठ या तो बहत्तर कलाएं हो, स्वागत। लेकिन पतिप्रियता ना हो तो नारी के लिए सभी लक्षण शायद बोझ बन जाये। नारद ने बड़ी पते की बात कही कि सर्वोत्तम लक्षण 'होइहि संतत पियहि पिआरी।' ये अपने पति को अत्यंत प्रिय होगी। लेकिन ऐसे पति को प्राप्त करने के लिए आपकी बेटी को तप करना होगा। और शिव वैसे तो आशुतोष है लेकिन दुराराध्य भी हैं। और 'मानस' में लिखा है कि 'इच्छित फल बिनु सिव अवराधे।'

मेरे श्रावक भाई-बहन अपने हृदय के कोने में इस सूत्र को संभाले रखिएगा। व्यक्ति के मन में कई इच्छाएं होती है क्योकिं हम जीव है। मन की इच्छानुकूल सिद्धि प्राप्ति होती है लेकिन कोई भी साधक किसी भी धर्म का, वर्ण का, जाति का, देश का, काल का हो, जब तक शिव आराधना नहीं करता, इच्छित फल असंभव। लेकिन शिव है दुराराध्य। नारद के ये वचन, हिमालय, तुम्हारी बेटी तप करे तो मैंने जो वर के लक्षण तुम्हारे सामने रखे हैं वो कैसा भी प्रारब्ध होगा भगवान महादेव उसको मिटा देंगे। और उसके जो अवगुण माने जाते हैं वो भी गुण माने जायेंगे। और यहां 'मानस' की एक चर्चास्पद चौपाई; चर्चास्पद तो नहीं है, लोगों ने बना दी है अपना पांडित्य पेश करने के लिए! शास्त्र सरलता से समझ में आता है, पांडित्य से नहीं। पांडित्य से शास्त्र ओर जटिल-कठिन हो जाता है। तो जिसकी बहुत चर्चा लोग करते हैं वो पंक्ति को भी उद्धृत करके मैं आगे बढ़ूं।

समरथ कहुँ नहिं दोषु गोसाईं।
रबि पावक सुरसरि की नाईं।।

ये तुलसी ने लिख दिया, समर्थ को कोई दोष नहीं। यहां तो लिखा है, समरथ को दोष नहीं। लेकिन हम तुरंत जोड़ देते हैं कि इसका मतलब सामान्य को दोष! ये तुलसी का वक्तव्य नहीं है। मेरे तुलसी दृष्टान्त देते हैं, क्षीर समुद्र में शेष नारायण की शैया पर नारायण विष्णु शयन करते हैं लेकिन नारायण को जगत में कोई दोष नहीं देता कि सांप की शैया में सोता है, कैसा आदमी है ये? क्या है ये? तुलसी को तीन कहना है। 'भानु कृसानु सर्ब रस खाहीं।' भानु माने सूर्य, कृसानु माने अग्नि। सूर्य-अग्नि दो ऐसे तत्त्व हैं, तत्त्वतः एक ही तत्त्व है लेकिन बिलग। वो सब रस खा जाते हैं। सूर्य एक गन्दा नाला हो उसका पानी भी सोख लेता है; गंगा का पानी भी सोख लेता है; सागर का पानी भी सोख लेता है। और अग्नि में जो डालो खा लेता है। लेकिन सूर्य को कोई दोष नहीं देता कि सर्वभक्षी होते हुए सूर्य की कोई निंदा नहीं करता। सब पूजा करते हैं। अग्नि की पूजा होती है। 'सुभ अरु असुभ सलिल सब बहई।' नारद कहते हैं, शुभ और अशुभ दोनों जल गंगा में बह जाते हैं। हिमालय से निकली गंगा में तो शुभ भी है लेकिन बीच-बीच में जहां से गंदे नाले जाते हैं तो अशुभ भी बहते हैं लेकिन गंगा को कोई अपवित्र नहीं कहता। क्यों? 'समरथ कहुँ नहिं दोषु गोसाईं।' और लोग क्या कहते हैं कि यहां तुलसी ने कह दिया जो समर्थ होते हैं, बड़े होते हैं उसको कोई दोष नहीं। समाज उदार है। और बड़े को कोई दोषयुक्त ना समझे तो भी समर्थ को चाहिए ओर आत्मचिंतन करे कि मेरा राई जैसा दोष भी समाज को धक्का लगा सकता है। उसको जागृत रहना पड़ता है। सूरज जागृत रहता है। अग्नि जागृत रहती है। और बहती गंगा कभी वेकेशन नहीं लेती कि आज सन्डे है; मैं नहीं बहूंगी। वो निरंतर प्रवाहमान, निरंतर जागृत, निरंतर सावधान रहते हैं।

हिमालय, शंकर को दोष नहीं लगेगा क्योंकि शंकर समर्थ है। सूर्य, चंद्र और अग्नि जिसके त्रिनेत्र हैं इसलिए शंकर समर्थ है। उसमें सूर्यतत्त्व भी है और अग्नितत्त्व भी है और उसके मस्तिष्क पर से गंगा भी बहती है। और मेरे दादाजी तो कहते थे कि बेटा, शायद समाज न माने, कल कोई प्रश्न करे तो उसको इतना ही कहना कि तुलसीदासजी समर्थ की व्याख्या करते हैं कि दुनिया समर्थ पैसोंवालों को कहे, मुबारक! दुनिया समर्थ कोई पदवाले को कहे, मुबारक! दुनिया समर्थ किसी को बड़े-बड़े प्राइज़ प्राप्त किये हो मुबारक! लेकिन तुलसी कहते हैं, एक फ़कीर कहता है, एक संत कहता है, एक बुद्धपुरुष कहता है, मैं तो उसी को समर्थ कहता हूं, जो निर्दोष है। मैं उसी को समर्थ कहता हूं 'नहीं दोष गोसाई।' 'निर्दोषं हि समं ब्रह्म।' 'भगवद्गीता' कहती है, समर्थ वो है जो निर्दोष है। और ये निर्दोष तत्त्व 'भगवद्गीता' में एक ब्रह्म है। और शंकर ब्रह्म है। उसकी एक आंख अग्नि है, एक आंख सूर्य अथवा तो चंद्र तेज का प्रतीक और गंगा उसके सिर से बहती है इसलिए शिव को कोई दोष नहीं लगता। ये नग्न रहे, कोई चिंता नहीं। ये भुजंग भूषण रहे, कोई दोष नहीं। ये गरल कंठ हो, कोई दोष नहीं। ये भीख मांगकर खाये, कोई दोष नहीं। ये स्मशान में निवास करे, कोई दोष नहीं। क्योंकि 'समरथ कहुँ नहीं दोष गोसाई।' शिष्ट भाषा में तो 'समर्थ' शब्द है लेकिन गोस्वामीजी लोकबाली में बोले तो 'समरथ'; रथ है शरीर। उपनिषदों ने भी कहा। शायद कल ही मैं गूर्जियेफ़ की बात कह रहा था कि आदमी का शरीर एक रथ है। सारथि बेहोश है। अंतरात्मा गूढ़ निद्रा में है। घोड़े बेकाबू है। कोई भी वटेमार्गु रथ को कहीं भी ले जा सकता है। हाथ, पैर, नेत्र, कर्ण, शरीर में समाहित सभी इन्द्रियां जो रथ है उस इन्द्रियां और शरीर का रथ जिसका कायम सम होता है उसको कोई दोष नहीं होता। जिसकी जीवनयात्रा सम है; समतामूलक है।

बुद्धपुरुष का एक सबसे बड़ा लक्षण होता है समता। यद्यपि बुद्धपुरुष में ममता ना हो ऐसी कोई बात नहीं। वो मोह-ममता भी रखता है। लेकिन अपना आश्रित जब भटक जाता है प्रतिष्ठा के लिए, जैसे निष्ठाभंग कर लेता है तब बुद्धपुरुष की ममता कम हो जाती है; समता कायम रह जाती है। हम एक वाक्य बोलते रहते हैं, जो दादाजी अक्सर बोला करते थे, 'गुरुदेव समर्थ, गुरुदेव समर्थ, गुरुदेव समर्थ, गुरुदेव समर्थ।' एक गुरुतत्त्व समर्थ है। और समर्थ वो है जिसकी इन्द्रियां और रथ सम है। ममता तो बुद्धपुरुष आरोपित करता है कि लोग अच्छे मार्ग पर रहे कि हमें ऐसे बुद्धपुरुष-महापुरुष की ममता प्राप्त हो गई ताकी चुके ना। तो ममता कभी-कभी छूट भी जाती है भटकते हुए आश्रित पर, लेकिन बुद्धपुरुष की समता कभी नहीं छूटती।

एक-दो प्रश्न भी ऐसे ही ले लूं। किसी ने शे'र लिखा है अंदाज़ देहलवीसाहब का।

तेरी आवाज़ से पत्थर भी पिघल सकता है।
तू वो लम्हा है जो सदियों को निगल सकता है।
मुझसे मत पूछ मेरी दिल की लगी का आलम,
मेरे अश्कों में तेरा हाथ भी जल सकता है।

एक दूसरा ये तो विनोद में किसी ने लिखा है, 'बापू, आपने कल कहा कि कन्याएं तप करती है, पुरुष क्या खाक तप करे? बापू, कन्याएं तो बीस साल तप करती है बाकी साठ साल पुरुष ही तप करता है! बापू, हकीकत तो ये है कि कन्याएं शादी से पहले अच्छा पति पाने के लिए तप करती हैं और शादी के बाद पति को तप कराती है! बापू, बताओ, पार्वतीजी ने कितने साल तप किया और भगवान शंकर ने कितने साल किया?' पार्वती ने करीब चार हजार के आसपास साल का तप है और मेरा शंकर 'बीतें संबत सहस सतासी। तजी समाधि संभु अबिनासी।' और माता का तप तो केवल दिखाया गया। मातायें तो तपमूर्ति ही है। वो तो स्वयं तपस्या मूर्ति है। मातृशरीर के तीनों रूप तपमूर्ति हैं। कन्यारूप तपमूर्ति। पत्नीरूप तपमूर्ति । पत्नी के रूप में भी नारी तपस्विनी है। और माँ के रूप में भी नारी तपस्विनी है।

मैं बहनों को प्रोत्साहित करने के लिए या तो उसका पक्ष लेने के लिए नहीं कह रहा हूं। तीनों रूप में मातृशरीर तपस्विनी है, ऐसा 'मानस' प्रमाण देता हैं। अब थोड़ा बदला है क्योंकि बहुत पीड़न हुआ नारी का। और ध्यान देना, ये भारत में नारी पर पीड़न हुआ, दबाव हुआ ऐसा नहीं है। ओर संस्कृति देखो साहब! वहां बहुत पीड़न हुआ है! मैं किसी धर्मविशेष का नाम लेना नहीं चाहता हूं पाश्चात्य धर्म, आप देखो जो नारी पर जुल्म गुजरा है वो! हिंदुस्तान में तो बहुत अच्छा है। और आज तो बहुत अच्छा है। कुछ बहुत दबाव किया है तो उसकी प्रतिक्रिया हो रही है बाकी मूल में नारीतत्त्व गजब है! पुरुष के रूप में ईश्वर को अवतार लेना होता है। शक्ति के रूप में तो माता कायम होती ही है। नारायण अवतार लेते हैं। नारायणी कायम होती है। हां, लीला के लिए किसी माँ की कोख से आ जाती है। किसी विशेष मातृशरीर का अवतरण धरती पर हो तो उसको आप अवतार कह सकते हैं। और दूसरी बात ये भी आप समझ लें कि ईश्वर का अवतार होता है, सद्गुरु का कभी अवतार नहीं होता। मेरे शब्दों को आप जरा गौर से सुनियेगा। ईश्वर का अवतार होता है, सद्गुरु का कभी अवतार नहीं होता क्योंकि सद्गुरु होता है। सद्गुरु कायम वर्तमान है। सद्गुरु कभी अपने पल को भूतकाल नहीं होने देता और अपने पल को भविष्य के लिए प्रतीक्षा में नहीं रखता। पल को पकड़े हुए होता है वो सद्गुरु। इसलिए 'जेनां बदले नहीं वर्तमान।' ये राज समढियाला, सौराष्ट्नुं एक खोबा जेवुं गामडुं। उसको पता था कि बुद्धपुरुष की अस्मिता क्या होती है?

शीलवंत साधुने वारेवारे नमीए पानबाई,
जेनां बदले नहीं व्रतमान रे।

वही भजनानंदी बुद्धपुरुष है जो पल को कभी भूतकाल नहीं होने देता और पल को कभी भविष्य में नहीं रखता। सद्गुरु का अवतार नहीं होता। सदगुरु होता है। तलगाजरडी विचार पैश करूं। सद्गुरु का अवतार नहीं होता है; सद्गुरु होता है। और ये समझिए मेरे साधक भाई-बहन कि सद्गुरु में दसों अवतार होते हैं। मीन, वराह,कर्मठ, सूकर आदि नरहरि एक सद्गुरु में दसों अवतार होते हैं। जो अवतार लेता है उसके साथ चार वस्तु जुड़ जाती है। सद्गुरु कायम असंग होता है। उसके साथ कोई भी वस्तु जुड़ नहीं सकती। अवतार के साथ चार वस्तु जुड़ी हुई है। अवतार के साथ नाम जुड़ जाता है। अवतार के साथ रूप जुड़ जाता है कि मुरलीधारी, धनुर्धारी, चक्रधारी, सारंगपाणि। अवतार के साथ लीला जुड़ जाती है और अवतार के साथ धाम जुड़ जाता है। यदि आप अपनी अनुभूति में गुरु को अवतार कहो तो भी मुझे आपत्ति नहीं है। गुरु का नाम होता है। गुरु का रूप होता है। गुरु की लीला होती है। गुरु का धाम होता है। ये प्रतिपादन करो एक लेवल पर पहुंचकर तो भी मुझे कोई आपत्ति नहीं। लेकिन आखिरी जो उंचाई है वो ये है।

गुरु का अवतार नहीं होता है, गुरु होता है। और अवतार नहीं होता इसलिए गुरु का कोई नाम नहीं होता। बहुधा हम अपने गुरु का नाम बोलते नहीं जानते हुए भी। 'रामचंद्र भगवान की जय' बोलते हैं लेकिन जो गुरु है उसकी जय, ठीक है, एक लेवल पर बोले बाकी हम क्या बोलते हैं? 'सद्गुरु भगवान की जय।' हम गुरु का नाम नहीं देते। गुरु का कोई नाम नहीं। गुरु है गुमनाम, बेनाम। नाम के बंधन में गुरु नहीं है। राम का नाम जपा जाता है। गुरु का नाम भी एक लेवल में आप जपो, मना नहीं कर रहा हूं लेकिन आख़िरी मंज़िल पर गुरु का नाम ही नहीं है। वो अनाम है। परिचय के लिए आप बोलो, लिखवा दो, बात ओर है। गुरु परम्परा में तुम्हें कोई मठ, तुम्हें कोई महन्त होना है, तो गुरु का नाम कर दो, पासपोर्ट में लिखवा दो, ये बात ओर है। लेकिन गुरु अनाम है।

दूसरा, अवतार जो होता है उसमें रूप होता है। गुरु का कोई रूप नहीं होता। हां, शरीरधारी जो है तो हम मान लें कि ये हमारे गुरु लेकिन तत्त्वतः गुरु का कोई रूप नहीं। गुरु रूप नहीं होता है, गुरु स्वरूप होता है। हम गुरु के रूप का जिक्र नहीं करते, हम स्वरूप की ओर संकेत करते हैं। रूप की सीमा है; अपना देश है; अपना काल है; अपनी जगह है। स्वरूप चेतना घूमती रहती है। गुरु का कोई रूप नहीं। गुरु का कोई नक्शा नहीं। गुरु की कोई आकृति नहीं। अवतार की लीला होती है। ललित नरलीला, मनुष्यलीला, कभी-कभी छललीला भी! गुरु की कोई लीला नहीं। गुरु की करुणा की क्रीड़ा होती है। विलसति है करुणा। कभी विवेकानंद के गुरु ठाकुर का चेहरा तो देखो, आपको लगेगा कि ये बूढ़े आदमी के मुख से आंखों से करुणा बह रही है। लीला नहीं; लीला का एक अर्थ होता है नाटक। लीला माने नाटक; जैसे रामलीला, कृष्णलीला। गुरु रंगमंच का कोई खिलैया नहीं है। कोई रंगभूमि का अभिनेता नहीं है गुरु। ये किसी न किसी अंदाज़ में आपको दिखाई दे तो वो केवल और केवल उसकी करुणा की क्रीड़ा है। न नाम होता है, न रूप होता है, न लीला होती है। गुरु का कोई धाम नहीं होता। मुझे वसीम बरेलवीसाहब का शे'र याद आता है-

वो जहां भी रहेगा रोशनी लुटायेगा।
चरागों को कोई अपना मकां नहीं होता।

दीपक को जहां रखो वहां प्रकाश करने लगेगा। ठीक है व्यवस्था के रूप में कुछ हो। हां, जन्मभूमि की महिमा होती है। कोई धाम नहीं। इसका मतलब ये नहीं कि अयोध्याधाम की कोई कीमत नहीं; चित्रकूटधाम की कोई कीमत नहीं; वृन्दावनधाम की कोई कीमत नहीं; कैलासधाम की कोई कीमत नहीं। ये जरूरी है। लेकिन आख़िर गुरु स्वयं अपने आप में धाम है। पूर्ण आश्रित को कोई पूछे, तुम्हारा गुरु का धाम क्या? तो यही कहना चाहिए, गुरु ही मेरा धाम है। गुरु ही मेरा नाम है। गुरु ही मेरा रूप है। गुरु ही मेरी करुणा है।

बुद्धपुरुष वो है जिसको प्रेम किये बिना आप रह ही न सको। हमारी कमजोरी हो जाती है। उसके रूप को प्रेम नहीं करते क्योंकि रूप उसका है ही नहीं। उसके नाम से आप प्रेम नहीं करते क्योंकि उसका नाम है नहीं क्योंकि वो गुमनाम है। उसको सुंदर फाईव स्टार आश्रम के लिए प्यार नहीं करते क्योंकि उसका कोई धाम है ही नहीं। उसकी जो लीला; उसका कोई नाटक नहीं है। उसकी तो करुणा की क्रीड़ा है। लेकिन हम आकर्षित हुए बिना रह नहीं सकते। कृष्णपना गुरु में होता है, जो हमें आकर्षित करता है, खींचता है; दुश्मनों को भी खींचता है। कोई भी इससे अछूता नहीं रह पाता। गुरु में बुद्ध होता है। इसलिए तो सद्गुरु का सगोत्री शब्द मैं सदैव यूझ करता हूं 'बुद्धपुरुष।' पूरा का पूरा बुद्ध उसमें उतरता है, तथागत उतरता है, यथार्थ रूप में उतरता है। और गुरु अवतार नहीं लेता लेकिन गुरु में दसों अवतार है।

गुरु का अवतार नहीं होता। जब मैंने जिम्मेदारी के साथ बोल दिया है तो आप तो श्रद्धा से मान लोगे क्योंकि मुझे पता है कि आपका दृढ़ भाव है व्यासपीठ के प्रति। लेकिन मेरा भी फ़र्ज हो जाता है। अवतार नहीं होता ऐसा गुरु है 'त्रिभुवन गुरु' शिव। महादेव का कोई अवतार नहीं। उसमें सभी अवतार है। महादेव का कौन नाम? कोई भी नाम लगा दो। ये आदमी गुमनाम है। क्या रूप? शिव का रूप क्या है? 'अमंगलमय शीलं' शिव की कोई लीला नहीं, याद रखो। इस आदमी ने कोई लीला नहीं की, करुणा की ही की। और उसका कोई धाम नहीं। गजब का आदमी है! तो ये त्रिभुवन गुरु जो है उसमें सभी अवतार समाहित होते हैं शिव के ही। तो नारद के वचन जो है हिमालय के प्रति कि नगाधिराज, शिव समर्थ है। उसको कोई दोष नहीं लगेगा।

कल का दौर संभाल लीजिए। मैना ने तो कह दिया, उमा मुझे प्राणाधिक प्रिय है। मैं इस जो वर्णन किया नारद ने ऐसे बाँवरे के साथ ब्याह नहीं करवाऊंगी। हिमालय ने कहा कि नारद के वचन मिथ्या नहीं हो सकते कभी भी। अब तुम्हें तुम्हारी सुता पर प्रेम है तो तू उसको समझा कि तप करे। और-

मातु पितहि बहुबिधि समुझाई।
चलीं उमा तप हित हरषाई।।

माँ-बाप को समझाया सब प्रकार से कि मैं तप करने जा रही हूं। मेरे लिए जा रही हूं। आपके मन में तप करने की तीव्रता आ जाये न तो इस पंक्ति को याद करना। यहां लिखा है तप करना है तो भी अपने वडील को समझा बुझाकर तप करने जाना। सबसे पहले माँ का आशीर्वाद लेना चाहिए, पिता का आशीर्वाद।

कल अरुणजी मुझे पूछ रहे थे बापू कि ये हजारों साल तक तप करना, एक पैर से तप करना, उलटे सिर तप करना, चारों और अग्नि लगाकर, कोई गले तक पानी में ठिठुरते हुए तप करना, कोई पोष महीना की ठंडी में, अगासी में ठंडा पानी रखे। फिर सुबह छह बजे इस से स्नान करना, ये सब तप आज के संदर्भ में प्रासंगिक हैं? और मुझे पूछा गया कि आपने एक पैर की तपस्या का बहुत अच्छा समाधान दे दिया कि एकनिष्ठ हो कर तप। बाकी एक पैर से खड़ा रहना जरा मुश्किल है। दो पैर से भी खड़े रहना मुश्किल, तो एक पैर से खड़े रहना!

तप जिसको कहते हैं? उसका इक्कीसवीं सदी के संदर्भ में मैं परिवर्तन नहीं कर रहा हूं। मैं कलियुग के संदर्भ में तप की व्याख्या नहीं करने जा रहा हूं। मैं द्वापर युग में योगेश्वर कृष्ण ने जो तप की परिभाषा की है वो आपके सामने रखना चाहता हूं। जो आज भी थोड़ी ईमानदारी हम में हो तो हम कर सकते हैं। जो तप की उद्घोषणा भगवान योगेश्वर कृष्ण ने 'गीता' में की है उसमें कहीं भी नहीं लिखा है एक पैर खड़े रहो, उपवास करो।

तीन प्रकार के पहले सात्त्विक तप बताये हैं 'भगवद्गीता' में। मानसिक तप, वाङ्मय तप और शारीरिक तप। मैं और आप हम चूटकी बजा के कर सकते हैं। कोई चिंता नहीं। पसीना काढ़ने की जरूरत नहीं। दिगंबरी लेने की जरूरत नहीं। धूप में अपने आपको खाक करने की जरूरत नहीं। इक्कीसवीं सदी क्या आनेवाली हजारों सदियों तक ये प्रेकटिकल रहेगा 'गीता' का वचन। शरीर का तप क्या है 'गीता' में?

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते।।

आठ हैं आठ। शरीर से तप करना है। एक पैर पर खड़े रहने की जरूरत नहीं। माँ रहे, माँ एक कर ले तो काफ़ी है। बच्चों को करने की जरूरत नहीं। देव; जो देव हो उसकी पूजा करना वो शरीर का तप है। तुम्हारे घर में कोई माताजी-देवी है, कोई देव है, सूर्यदेव की पूजा करो, तो शरीर से नमस्कार करो, जल चढ़ाओ। सूर्य नमस्कार करो। विध-विध देव है जो-जो देव हैं उसका पूजन करना शरीर का तप। आठ वस्तु गिनाई। और हमारे घर में कोई आपका कोई कुलदेव हो, आप कुलदेवी की पूजा करते हैं। पूजन पांच मिनट, दस मिनट आप अपने घर में करते हो, शरीर का तप है।

दूसरा, जो द्विज है उसका पूजन करो। द्विज माने कोई बुद्धपुरुष जिसका दूसरा जन्म हो चुका है। एक बार माँ के गर्भ से प्रकट हुआ फिर कोई बुद्धपुरुष मिल गया और बुद्धपुरुष ने उसको नया चैतन्य दिया ऐसे कोई द्विज दूसरी बार जन्म हो चुका है, ऐसा पहुंचा हुआ कोई फ़कीर अपने आंगन में आ जाये तो उसको आदर-सत्कार करके, जल पीला करके, रोटी खिलाकर के पूजन शरीर का तप है। गुरु; गुरु जो हो उसका पूजन। यहां 'गुरु' शब्द का स्वामी रामसुखदासजी ने अर्थ किया कि गुरु माने माता-पिता, आचार्य और बड़े बुजुर्ग; चार बताया स्वामीजी ने। गुरु का पूजन करो माने माँ की पूजा। माँ की पूजा माने माँ की सेवा। जिसने जन्म दिया, जिसने करुणा से भर दिया, जिसने पालन किया, उसको आदर। पिता; जिसने पोषण किया। आचार्य, जिसने शिक्षा दी, विद्या दी, उसकी पूजा। और हमारे कुल में, हमारे गांव में, हमारे पडोस में, हमारी जाति में, हमारी बिरादरी में अथवा तो कहीं भी जाये; कोई हमारे से वयोवृद्ध है, उसको आदर देना शारीरिक तप है।

प्राज्ञ, बुद्धिमान; कोई साहित्यकार, कोई सर्जक, कोई विद्वान, कोई पंडित, कोई विद्यावान जो प्राज्ञ है, कोई बुद्धिमान भले तुम उनके विचारों से सहमत हो न हो लेकिन आदमी पढ़ा-लिखा है, हमारे से बड़ा है, उसका पूजन करो, उसको आदर दो, उसको सुनो ये शारीरिक तप है। शौचम्; शौच माने पवित्रता। जहां तक हमारी सन्मति रहे अंदर से हम पवित्र रहने की कोशिश करें। शरीर को स्वच्छ रखें और विचारों को पवित्र रखें। आर्जवम्; कितना ही सामर्थ्य हो तो भी सरलता बनाये रखना शरीर का तप। आर्जवम्, ऋजुता, नम्रता। ब्रह्मचर्य; ब्रह्मचर्य माने यहां संयम, सम्यक्ता। बाकी ब्रह्मचर्य की बातें हो सकती है, होना बहुत मुश्किल है। अहिंसा; किसी की हिंसा न करें, किसी को धक्का न दें, किसी को धक्का देकर आगे जाने की चेष्टा न करें; किसी को हानि न पहुंचे, पीड़न न हो, शारीरिक तप है।

फिर वाणी का तप; जो वचन उद्वेग पैदा न करे ऐसा वचन बोलना। 'अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।' वाणी ता तप क्या है? दूसरे को उद्वेग हो, ऐसा न बोलना वाणी का तप है। दूसरा, सत्य बोलना वाणी का तप लेकिन सत्य बोलना वो भी प्रिय बोलना, क्योंकि सत्य होने के बाद प्रिय बोलना ये बहुत कठिन पड़ेगा। सत्य है और फिर भी प्रिय बोलना ये तप है। स्वाध्याय करना। 'रुद्राष्टक' का पाठ करो; आपको समय मिले 'भगवद्गीता' का एक अध्याय पढ़ो; 'महिम्न' का पाठ करो; 'श्रीसूक्तम्' का पाठ करो; कोई भी शास्त्र का स्वाध्याय ये वाणी का तप है।

ये वाङ्मय तप है। और फिर मानसिक तप। ये सब सात्त्विक तप है। 'गीता' में मानसिक तप है, 'मनःप्रसादः सौम्यत्वं।' कोई भी परिस्थिति हो, लेकिन प्रसन्न रहना मानसिक तप है। परिस्थिति कोई भी हो और प्रसन्न रहना, बहुत बड़ा कठिन तप है। क्योंकि हर परिस्थिति हमको विचलित कर देती है। सौम्यत्वं का अर्थ है सौम्य रहना, शांत रहना, समता में रहना, परिस्थिति गम में कहीं भी घूमा दे लेकिन सम पर आ जाना। आदमी अपनी खानदानी को, अपनी कुल पवित्र परम्परा को याद करके सम पर आ जाये वो मन की तपस्या है; ये मन का तप है। मौन रहना, चिंतनशील रहना, चिंतन में डूबे रहना, ये मन का तप है। लेकिन ये सात्त्विक तप है। फिर राजसी तप का वर्णन 'गीता' ने किया है राजसी तप क्या है?

सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत्।

सत्कार के लिए, मानपत्र लेने के लिए और हमारी पूजा हो इसलिए दम्भपूर्वक जो तप किया जाये वो राजसी तप है। आदमी तप करता है। तीस दिन तक का उपवास किया। हेतु क्या होता है? हमारा सत्कार हो। ये सत्कार के लिए तप हुआ है। हमें कोई मानपत्र दे कि आहाहा, क्या तपस्या की है! तीन साल अखंड मौन रखा था और कोई प्रमाणपत्र दे। ये तप राजसी बता दिया। पूजा के लिए कि हम इतने बड़े तपस्वी है। हम ये करते थे, हम ये करते थे, हमारी पूजा करे लोग! पूजा हेतु, सत्कार हेतु, मान के लिए। 'दम्भेन', दम्भपूर्वक जो तप करे, उसको 'गीता' में राजसी तप कहा। तप तो है प्लीज़, आप मुझे समझोंगे। न समझों तो चिंता नहीं! बाकी कोई तप करे और उसका सत्कार हो उसका मैं विरोधी नहीं। ऐसे तपस्वियों के सत्कार में भी शरीक हुआ हूं। लेकिन ये तप राजसी है, ये तो मेरा गोविन्द कह चुका है। ये सब राजसी तप है। मुझे जितना स्मरण में आ रहा है, कह रहा हूं। सत्रहवें अध्याय में है-

मूढग्राहेणात्मनो यत् पीडया क्रियते तपः।
परस्य उत्सादनार्थं वा तत् तामसम् उदाहृतम्।।

हां, मूढ़ता के कारण, नासमझी के कारण अपने मन और अपने शरीर को कष्ट देना तामसी तप है। अब आप इस काल में एक पैर खड़े रहो और आप अपने शरीर को यदि कष्ट दो तो ये मूढ़ता है! मैं न भूलता हूं तो 'गीता'में लिखा है, दूसरों को तप करके पीड़ित करने के लिए, दूसरों को कष्ट पहुंचाने के लिए जो तप किया जाये वो तामसी तप है। शरीर को पीड़ा मत दो। उपवास करो, व्रत करो, जरूर। मैं राजी होता हूं। उपवास, व्रत की अपनी महिमा है लेकिन शरीर को कष्ट मत दो। सम्यक् आहार; खाने योग्य खाओ, ठाकुरजी को भोग लगा सको तुलसी पत्र डालकर ऐसा भोग प्रेम से स्वाद लेकर खाओ। भूखे रहने की जरूरत नहीं। फिर भी व्रत करो तो करो लेकिन अत्यंत शरीर को तोड़ ना दे। मैंने कई बार आपको कहा, बार-बार बोलता हूं, मैं कथा में जाता हूं तो पहले दिन, दूसरे दिन, तीसरे दिन, मेरा खुराक कम होने लगता है। ये मेरा कायम का सालों का अनुभव है। फिर मेरा खुराक कम होता जाता है। तो शरीर को पीड़ा देना 'गीता'कार ने मना किया। और कई लोक मंत्र-जंत्र-तप करते हैं लेकिन अन्य को मुश्किल में डालने के लिए। तो इसको 'भगवद्गीता'कार ने तामसी तप की संज्ञा दी है।

तो ये शास्त्रोक्त तप की बात कही। लेकिन बीच-बीच में मेरी व्यासपीठ कई बार बोली है कि तुम निर्दोष हो और कोई तुम्हें गाली-गलौच करे तो समर्थ होते हुए भी आप उसको अनसुना कर दो तो वो भी तप है कि नासमझ है, क्यों उसके बोल पर हम जाएं? तितिक्षा तप है। तो तप की आज के सन्दर्भ में व्याख्या हम कर सकते हैं लेकिन 'गीता' की व्याख्या मुझे सार्वभौम लग रही है।

मेरे श्रोताने एक बार पूछा था कि बापू, वाल्मीकिजी को भगवान राम ने पूछा कि हम कहां रहें? तो वाल्मीकिजी ने रहने के चौदह स्थान बताये। मुझे सीधा पूछा कि बापू, हम आपको पूछे कि हम कैसे रहे? आप थोड़े स्थान बता दो। पांच स्थान। एक, कैसे रहना है? मैंने कोई कथा में कहा है। आपको याद आ जायेगा अथवा तो कहीं प्रिंट हुआ होगा। कैसे रहना? एक, विचार में रहना। बिना विचार मत जीना। अत्यंत विचार भी मत करना। जिसको बुद्ध सम्यक् विचार कहते हैं। आदमी विचारशील होना चाहिए। विचार में जीयो। अत्यंत नहीं, ध्यान देना। विचार में रहना लेकिन केवल विचार में रहोगे तो आप गंभीर हो जाओगे, सिरीयस हो जाओगे। चिंतकों के फोटो देखना, पूरी दुनिया को सिर पर लिए बैठे हैं! विचार में निमग्न बस! व्यासपीठ कहेगी, विचार में रहना। और दूसरा विनोद में रहना। हल्के-फुल्के रहना यार, रिलेक्ष रहना। प्रसन्नता से रहना। हंसे ही ना ये क्या? मेरा राघव बंदरों से विनोद करते हैं लंका के रण मैदान में। रहना सिखाया, ऐसे रहो। हनुमानजी ने सिखाया विचार में रहो, राम ने सिखाया विनोद में जीओ। विचार में रहना, विनोद में रहना।

तीसरा, समझ पक्की हो तो धीरे-धीरे वैराग में रहना; धीरे-धीरे निवृत्ति। जब सांप कांचली उतारे खबर न पड़े। विराग में रहना। धीरे-धीरे नामस्मरण बहुत बढ़ाओ यार, वैराग पैर चूमता आयेगा। तुम्हारे पीछे-पीछे वैराग आयेगा और दुनिया को पता भी नहीं लगेगा।

चौथा सूत्र है, विश्वास में जीना। एक अटल भरोसो। विश्वास में जीना, ये चौथा ठिकाना। ये सब तुमको प्लोट देता हूं। विचार में रहना हो, विचारवाला प्लोट ले ले। विनोद में रहना वो प्लोट ले ले । विचार में, विनोद में, विराग में, विश्वास में। मोरारिबापू चाहता है, कथा सुनी है तो पांचवां प्लोट है विवेक में जीना।

प्राणपति के चरणों को हृदय में धारण करके उमा वन में तप करने लगी और उनके तप की थोड़ी बात गोस्वामीजी ने क्रमशः बताई उसकी चर्चा कल करेंगे। कर्म की पीठ पर बैठकर परम विवेकी याज्ञवल्क्यजी रामकथा भरद्वाजजी को कहने लगे। रामकथा के बारे में पूछा और कथा का आरम्भ हुआ शिवकथा से। हे महाराज, एक बार त्रेतायुग में भगवान शिव कुम्भज ऋषि के पास गए। उसके साथ जगजननी भवानी गई। जब कुम्भज ऋषि के आश्रम में दोनों गए तो अखिलेश्वर समझकर महर्षि अगस्त्यजी ने उसकी पूजा की, सत्कार किया। शिव ने कुम्भज की विनम्रता का बहुत प्यारा अर्थ निकाला लेकिन दक्षकन्या एक बुद्धिमान बाप की बेटी होने के नाते सती ने गलत अर्थ कर दिया कि ये हमारी पूजा करने लगा और जिसका जन्म कुम्भ से हुआ है, घडे से हुआ है ये सागर जैसी रामकथा क्या खाक गायेगा? कुम्भज ऋषि रामकथा सुनाने लगे। सती बैठी थी लेकिन कथा में रस नहीं था। कथा का सुख नहीं प्राप्त किया। शिव बहुत सुख से कथा सुन रहे। कथा पूरी हुई। भगवान महादेव को लगा कि महात्मा ने मुझे कथा सुनाई, मुझे कोई दक्षिणा देनी चाहिए। ऋषि ने भक्ति जिज्ञासा की। भगवान महादेव ने अधिकारी समझकर भक्ति गाथा सुनाई। मुनि से विदा मांगी।

वो समय था जब शिव और सती कथा सुनकर कैलास के लिए दंडकारण्य के मार्ग से गुजरे। वो त्रेतायुग तो था ही और शास्त्र के अनुकूल प्रत्येक त्रेतायुग में राम अवतार होता है। वर्तमान त्रेतायुग की रामलीला चालु थी और भगवान राम की ललित नरलीला उस पडाव तक पहुंची थी कि रावण यति वेश में आकर पंचवटी से जानकी का अपहरण करके निकल गया। सीता के वियोग में प्राकृत इन्सान की तरह भगवान रुदन करते हुए जानकी की खोज करते हुए वन में भटक रहे हैं। उसी समय शिव और सती वहीं से निकले। भगवान शिव ने दूर से भगवान राम का दर्शन किया कि ओह! जिसकी कथा सुनने मैं कुम्भज के पास गया वो मेरे ठाकुर की लीला तो वर्तमान है! 'है सच्चिदानंद, हे जगपावन' कहकर भगवान शिव प्रणाम कर लेते हैं। सती ने ये सब देखा कि हद है! एक व्यक्ति की पत्नी को कोई चुरा ले गया है और वो रो रहा है और मेरे पतिदेव ने उसको सत्-चित्त-आनंद कहकर प्रणाम कर दिया! सती के मन में उहापोह शुरू हो गया। भगवान शिव समझ गए कि सती दूसरा अवतार भी चुक रही है। वहां रामकथा चुक गई, यहां रामदर्शन चुक रही है! इसलिए करुणा अवतार शिव कहने लगे कि देवी, मैं समझ गया आपके मन में संदेह उत्पन्न हो गया कि ये काहे का ब्रह्म है, जो स्त्री के वियोग में धूम रहा है! और मैंने उसको सच्चिदानंद कह दिया! लेकिन हे देवी, आपका नारी स्वभाव है। संशय न करो। जिसकी कथा कुंभज ने गाई, जिसकी भक्ति मैंने कुंभज को दी वो मेरे राम है देवी। आप संदेह न करो। शिवजी ने बार-बार उपदेश दिया कि देवी, मान जाओ, ये परमात्मा है। मेरे पर तो भरोसा करो। लेकिन सती को उपदेश नहीं लगा। शिव ने बार-बार रिपिट किया समझाने के लिए फिर भी सती नहीं मानी। सती बहुत सोचते हुए सीता का रूप लेकर राम की परीक्षा करने गई। और यहां शिव हरि भजन में डूबे हैं। आगे की कथा का दौर हम कल आगे बढ़ायेंगे। आज यहीं विराम।

बुद्धपुरुष का एक सबसे बड़ा लक्षण होता है समता। यद्यपि बुद्धपुरुष में ममता ना हो ऐसी कोई बात नहीं। वो मोह-ममता भी रखता है। लेकिन अपना आश्रित जब भटक जाता है प्रतिष्ठा के लिए, जैसे निष्ठाभंग कर लेता है तब बुद्धपुरुष की ममता कम हो जाती है; समता कायम रह जाती है। ममता तो बुद्धपुरुष आरोपित करता है कि लोग अच्छे मार्ग पर रहे कि हमें ऐसे बुद्धपुरुष-महापुरुष की ममता प्राप्त हो गई। तो ममता कभी-कभी छूट भी जाती है भटकते हुए आश्रित पर, लेकिन बुद्धपुरुष की समता कभी नहीं छूटती।

मानस–कन्याकुमारी : ४

बुद्धपुरुष के वचन सगर्भ, सहेतु और सतर्क होते हैं

कल के वक्तव्य के बारे में बहुत-सी जिज्ञासाएं और बड़ी प्यारी जिज्ञासाएं है। यथासमय और यथासमझ मैं कोशिश करूंगा कि आज की कथा में संदर्भ देखकर के उसको मैं उठा सकूं। नगाधिराज हिमालय ने महारानी मैना को कहा कि चंद्र से कभी आग नहीं प्रकट हो सकती, लेकिन कभी चांद से अग्नि प्रकट भी हो जाये तो भी नारद के वचन अन्यथा नहीं हो सकते। इसलिए हे देवी! नारद ने हमारी बेटी को सीख दी है उसी सीख के अनुकूल ही हमारी कन्या को आगे यात्रा करनी चाहिए। यद्यपि माता-पिता होने के कारण हमें पीड़ा होती है कि तप करने की उम्र हमारी है और अति सुकुमार जो कन्या है उसको तप! जरा ज्यादा लग रहा हैं फिर भी नारद के वचन परम कल्याणकारी होते हैं। और यहां एक बहुत पते की बात गोस्वामीजी ने नारद का स्मरण करते हुए हिमालय के मुख में रखी वो साधकों को चिंतन करना चाहिए। गुरु के वचन की महिमा करो। कैसे होते हैं गुरु के वचन? और मैं सहज भाव से 'गुरु' शब्द बोल देता हूं तब मन में सद्गुरु है।

तो यहां मेरी मानसिकता जो है वो सद्गुरु को केन्द्र में रखते हुए। सद्गुरु अरूप है। सद्गुरु अनाम है। सद्गुरु 'हरि व्यापक सर्वत्र समाना' की तरह है। कोई विशेष स्थान नहीं हो सकता उसका। यद्यपि मैंने कई बार आप से बात की कि उपनिषदों में 'गुरु' शब्द ही आया है। ये 'गुरु' शब्द बहुत ऊंचा शब्द है निःशंक। आपके सामने दिल खोल के बात कर रहा हूं। गुरुकृपा से कुछ आप सब की दुआओं से मेरे कुछ अनुभव शेर कर रहा हूं। मैं क्यों सद्गुरु-सद्गुरु कहा करता हूं? गोस्वामीजी ने तो कई बार 'गुरु' शब्द का प्रयोग किया है। लेकिन चार बार मात्र 'सद्गुरु' शब्द का उपयोग कर के तुलसी बहुत विशेष संकेत कर देते हैं। और हम इतनी ऊंचाई पर पहुंचे नहीं हैं मैं और आप फिर भी चांद तक जा नहीं पाते, चांद को देखे तो सही। सूरज को पकड़ा नहीं जा सकता, नमन तो करें, प्रणाम तो करें। इसी रूप में सद्गुरुओं की ऊंचाई का अहसास और थोड़ा संकेत यहां मिलता है हिमालय की जूबां से।

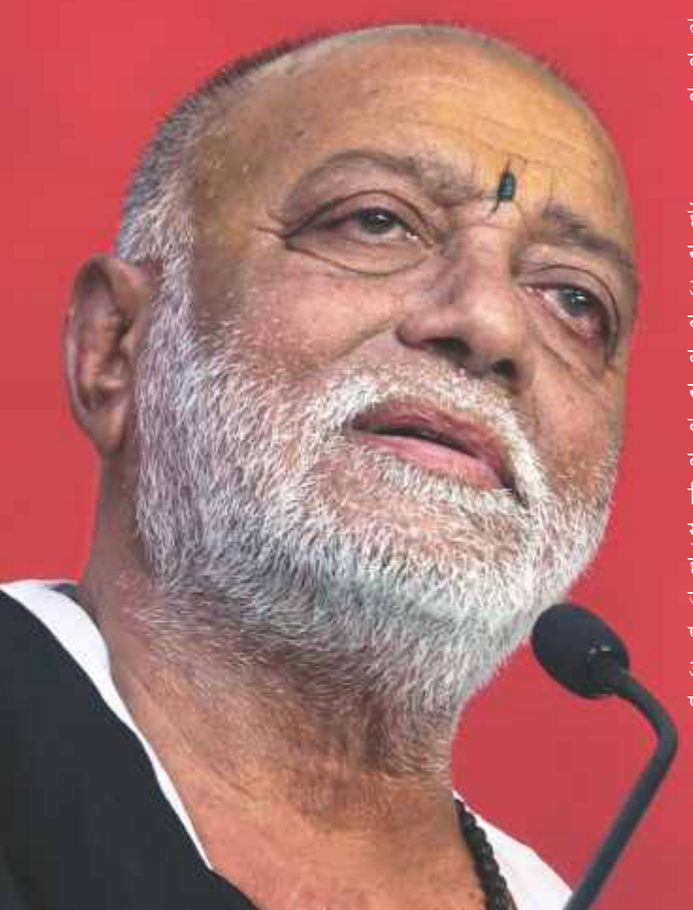

नारद बचन सगर्भ सहेतू।
सुंदर सब गुन निधि वृषकेतू।।

हे महारानी मैना, शिव सुंदर है, गुणनिधि है वृषकेतु। नारद के वचन सगर्भ है, सहेतु है। तलगाजरडा एक शब्द और जोड़ना चाहता है। गुरु के वचन सगर्भ होते हैं। गुरु के वचन सहेतु, कोई भी गुरु के वचन बोलेगा तो उस के पास कोई न कोई हेतु होगा। इसलिए फिर में याद करूं गंगा सती कहती हैं, 'गुरुगादी के अधिकारी बनने की चेष्टा न करो, गुरुवचन के अधिकारी बनने की चेष्टा करो।' मुझे कल सायकाल को भी पूछा गया कि ये आपने कैसे कह दिया कि गुरु को कोई उत्तराधिकारी नहीं होता? जिसका गुरु उत्तराधिकारी होता है वो केवल उनके पदार्थों का होता है। आश्रम एक पदार्थ है, जमीन का टुकड़ा है। गुरु जहां बैठता था वो आसन किसी को मिल गया लेकिन है पदार्थ। प्रासादिक प्रसाद है, यस। लेकिन सीधा सद्गुरु का अधिकारी कौन हो सकता है? इसलिए सद्गुरुओं की कोई परम्परा नहीं होती। जहां भी परम्परा है, समझो धर्मगुरु है। जहां भी परम्परा है, समझिये कुलगुरु है। मैं आपसे पुछूं, कबीर की कोई परम्परा है? यद्यपि जमाने का एक स्वभाव है कि किसी न किसी बुद्धपुरुष के मार्ग पर हम कुछ न कुछ छोटी पगदंड़ियां बना लेते हैं। बाकी कबीर की कोई परम्परा नहीं है। मीरां की कोई परम्परा है? मीरां का कोई आश्रम है? 'स्वदेशो भुवनत्रयम्।' तीनों भुवन जिसका देश बन जाता है। न हिंदुस्तान; हिंदुस्तान में जन्म लेने का गौरव और सात्त्विक आनंद होना चाहिए लेकिन बुद्धपुरुष के लिए हिंदुस्तान देश नहीं होता। त्रिभुवन उनका स्वदेश होता है। इसलिए सद्गुरु की कोई परम्परा नहीं। मीरां का कोई आश्रम नहीं दिखता। कबीरसाहब के तो मिलते भी हैं, लेकिन मीरां के इससे भी कम मिलते हैं। कबीरसाहब के तो गांव-गांव में मंदिर होंगे। ये जरूरी भी है। कोई आलोचना न समझे, हां साहब!

यहां बैठे हो तो मुझे सुनने के लिए थोड़ा लिफ्ट होकर सुनियेगा, प्लीज़। वरना आप की बुद्धि डांवाडोल हो सकती है! सद्गुरु कुछ भी छोड़कर नहीं जाता। सब कुछ लेकर चला जाता है और सूक्ष्म रूप में सब में समा जाता है। सद्गुरु के अंग की मूर्ति बनती है, अंगी की नहीं। त्रिभुवनदास दादा के हाथ कैसे थे, तो वो बनाये गए अवश्य, हूबहू बना दिए गए जो तलगाजडा के मंदिर में मूर्ति दादा की एक स्मरण के लिए रख दी हमने। लेकिन मैं इस मूर्ति तक रुका नहीं हूं। अल्लाह करे, ये मूर्ति मेरा बंधन न हो। गुरु भी जंजीर बन सकता है। गुरु झांझर बने तब तक ठीक है, गुरु जंजीर बने तब खतरा है। गुरु नूपुर बन जाए। मीरां के पैरों में राजस्थानी मर्यादाएं, राजस्थानी, जो-जो हुक्म होंगे, कोई जंजीर नहीं बनी। मीरां के पैरों में झांझर आये, नूपुर आये। आजकल मेरे दिमाग में मीरां घूम रही है। तो मीरां बहुत निकट पड़ती है। अरे यहां जिस भूमि पर हम बैठे हैं वहीं से मीरां शायद दूर भी पड़े क्योंकि राजस्थान भूगोल के रूप में, लेकिन यहां की आंडाल लो, जो साउथ की मीरां मानी गई है आंडाल। विष्णुपति की कन्या। एक तुलसी के क्यारे से मिली थी एक मासूम जैसी बच्ची। जो साउथ की आंडाल, जो एक मीरां थी, जो कन्याकुमारी थी। साउथ की भूमि में इसे मीरां कहूं, जो आज ज्यादा निकट पड़ रही है। मीरां तो दूर है। राधा तो बहुत दूर! मीरां का कोई उत्तराधिकारी नहीं है। कबीर का कोई उत्तराधिकारी नहीं। सद्गुरु का कोई उत्तराधिकारी नहीं होता है। वो एक ही होता है। उसके समान कोई नहीं होता है।

कोई भी बुद्धपुरुष के वचन सगर्भ होते हैं और सहेतु होते हैं। तुम्हारे मन में किसी बुद्धपुरुष में आस्था है तो उसके वचन के अधिकारी आपको होना चाहिए। और ये समझना कि गुरु ने मुझे डांटा तो बुरा मत मानना, उसके पीछे कुछ हेतु है। गुरु के वचन का हेतु आप न पकड़ पाओ तो वेइट करो क्योंकि गुरु के वचन सगर्भ है। समय आते ही कुछ निकलेगा। ये सगर्भ है। तलगाजरडा एक शब्द ओर जोड़ना चाहता है। गुरु के वचन सतर्क होते हैं। सतर्क का एक अर्थ है तर्कयुक्त। बौद्धिक भी होते हैं और दूसरा, सतर्क माने जागृत होते हैं; सावधानी से बोले गये शब्द।

तीन प्रकार के जीव की श्रेणी है बाप! एक तो विषयी जिसमें हम सब आते हैं विषयी। विषयी आदमी कुबूल ही नहीं करता है कि मेरी भूल है। उसको विषयी कहा। वो कभी इन्कार नहीं करेगा। दलीलें करेगा, क्योंकि उसको पता ही नहीं कि ये मेरी भूल है। अपनी जगह वो गलत नहीं है लेकिन उसको पता नहीं कि वो क्या कर रहा है। क्योंकि विषयी है। हम सबकी अवस्था ऐसी है। साधक वो है जो भूल कबूल करे। मेरी समझ में भूल करनेवाला जितना अपराधी है इससे ज्यादा अपराधी है भूल न कबूल करनेवाला। और नहीं करता वो भी कारण है कि उसको पता ही नहीं है। उसने अपनी होशियारी की शराब पी है।

एक वस्तु याद रखना, अत्यंत होशियारी करने से रोग होते हैं। मैं साबित करना चाहता हूं। अत्यंत होशियारी अच्छी नहीं है। धीरे-धीरे तुम जवान होंगे तो भी तुम में रोग के कीटाणु प्रवेश कर जायेंगे क्योंकि अत्यंत होशियारी शरीर के फिज़िकल कुछ पोईन्ट को छूती है। शरीर के जो निष्णात हैं ऐसे महानुभावों से भी जब मेरी बात होती है तो मैं ये चर्चा जिज्ञासा के तौर पर छेड़ता हूं कि ऐसा होता है? जैसे अत्यंत पवित्रता और प्रसन्नता की असर बोडी पर होती है वैसे अत्यंत होशियारी की असर होती है। तुम दूसरे को शीशे में उतार देने के लिए, कभी अपनी हार न कबूल करने की जिद्द के लिए अत्यंत होशियारी करोगे, धीरे-धीरे किसी न किसी रोग के कीटाणु आप में प्रवेश करेंगे, जिसको प्रोटेक्ट नहीं सकते। क्योंकि ये रोग किताबों में लिखा हुआ रोग नहीं है। तुम्हारी होशियारी ने अर्जित किया हुआ ये रोग है। होशियारी रोग है। जो कहते हैं, हम ही सच्चे, दूसरा गलत, वो धीरे-धीरे मानसिक तो बीमार ओलरेडी हो गया है। मानसिक रुग्णता तो है। सद्गुरु के वचन सगर्भ होते हैं। सहेतु होते हैं, जागृति से जन्मते हैं, सतर्क होते हैं।

साधक वो है जो भूल कबूल करे और अब भूल न हो जाये इसलिए जागृत रहे और जिज्ञासा करके बहुत आगे बढ़ने की कोशिश करे। सिद्ध वो है जिसको समाधान प्राप्त हो गया। सभी समस्याएं समाप्त हो गई। और उसके साथ जो व्यासपीठ ने जोड़ा है आखिरी तत्त्व, शुद्ध। अत्यंत होशियारी बीमारी देती है। यानी शारीरिक असर करती है। अत्यंत होशियारी आदमी के मन पर भी असर करती है। और ध्यान देना, अत्यंत होशियारी तुम्हारे धन पर भी असर करती है। तुम बहुत चालाकी करो तो तुम्हारा धन बीजो कोई एवी रीते तमने शीशामां उतारी दे के तमने खबरे ना पड़े! नोटे तो गजब करी यार! आठ तारीख आठ बजे बहुत आनंद आया! बाप! जो भी हो। मोजमां रेवुं। इस बहुत प्रसिद्ध गीत का रचनाकार तखतदानजी अब हमारे बीच में नहीं है। मैं इस गीतकार को मेरी श्रद्धांजलि समर्पित करता हूं।

मोजमां रे'वुं, मोजमां रे'वुं, मोजमां रे'वुं रे,
अगम अगोचर अलखधणीनी खोजमां रे'वुं रे।
रामकृपा एने रोज दिवाळी अने रंगनां टाणां रे।
काम करशे एनी कोठीए कोई दि नहीं खुटशे दाणा रे।

बाप! अतिशय होशियारी रोग को निमंत्रित करती है। शारीरिक असर। अत्यंत होशियारी मानवी के मन को ठीक नहीं रहने देती है। अत्यंत होशियारी आदमी के धन पर भी असर करती है। बेसुर में कोई आदमी गाये ना तो जानकार सबको पता लग जाता है कि बेसुर मैं हैं! लेकिन जब हम भूल कबूल ही न करें, तब हमने मूढ़ता की शराब पी है! इसलिए हम विषयी है। भूल कबूल करें और जीवनयात्रा को रहस्यों की खोज में लगा दें तब हम साधक है। और केवल कृपाश्रित रहकर दोनों से धीरे-धीरे आगे बढ़ने की बात करें तब कुछ और है।

किसी भी बुद्धपुरुष के वचन को 'मानस' के आधार पर सगर्भ समझें सहेतु समझें और तलगाजरडा के आधार पर सतर्क भी समझें। यानी सावधान रहे। गुरु के वचन सावधानी से सुने। वो समाधि से बोले न तो भी उसके बचन सतर्क होते हैं। मैं 'गुरु' शब्द बोलूं तो ध्यान रखना, मैं कहना क्या चाहता हूं, सद्गुरु। क्योंकि गुरु की मूर्तियां उसके अंगों को दर्शाती है, अंगी को नहीं। तलगाजरडा में दादा की मूर्ति है तो मैं कह सकता हूं कि हाथ बिलकुल जैसे दादा के थे वैसे। लेकिन ये अंग का परिचय देते हैं। आंखें दादा की है। वो पगड़ी दादाजी की है। वो बेरखा उसका है। गले में जो माला रखते थे; वो तिलक हमारा वैष्णवी तिलक है। ये कंठ उसका है। ये सब अंग की बात है, अंगी का क्या? अंगी का कोई रूप नहीं हो सकता। इसलिए शास्त्रों में जब आपको मिले कि गुरु का नाम लो, मूर्ति रखो, तो कोई आपत्ति नहीं है लेकिन यहां जो बातें हो रही है ये कुछ ऐसी ऊंचाई का अहसास यदि अल्लाह करे हमें हो जाये तो ज्यादा हम उसमें प्रवेश कर पाते हैं। गुरुओं की बात आती है तो मुझे बहुत अच्छा लता है।

थोड़ा विषयांतर हो जाएगा लेकिन थोड़ा वो चेन्ज करने के लिए। दिला ने मुझे साहिर लुधियानवीसाहब की गज़ल दी है। मैं पढ़कर सुनाऊं।

खुदा के वास्ते यूं बेरुखियों से काम न ले।
तड़प के कोई दामन को तेरा थाम न ले।
जमानेभर में है चर्चे मेरी तबाही के,
मैं डर रहा हूं कहीं कोई तेरा नाम न ले।

तो हे मैना, सद्गुरु के वचन सहेतु, सगर्भ और सतर्क होते हैं। तप की बात पकड़ ली उमा ने और हृदय में प्राणपति के चरणों को स्थापित करके तप करने लगी बिपिन में जाकर। कन्याकुमारी कितनी मासूम, कितनी सुकोमल रही होगी! लेकिन पति को प्राप्त करने के लिए सभी भोग उसने छोड़ दिए।

कन्यारूप तीन वस्तु का होता है। कन्यारूप एक व्यक्ति के रूप में होता है। चाहे पुरुष हो तो ये कुमार है। स्त्री है तो कुमारी है। व्यक्ति केन्द्रित है। कन्यारूप शक्ति का भी होता है और कन्यारूप भक्ति का भी होता है। उसका विश्लेषण जरूरी है। व्यक्ति के रूप में कन्याकुमारी ये माँ है जो एक पैर पर खड़ी है। यहां लिखा है, भवानी ने सब भोग छोड़ दिए। व्यक्ति के रूप में कन्या किसको कहोगे? ये सांसारिक कन्या की बात नहीं है। फिर मैं उसी ऊंचाई का अहेसास कराने की कोशिश करूं। व्यक्ति के रूप में कन्या उसको मानी जाये, आध्यात्मिक कन्याकुमारी प्लीज़, भौतिक नहीं।

पांचों पांच विषयों से जो अनटच रही, ऐसी व्यक्ति कन्या है। मुश्किल, दुर्लभ, करीब-करीब असंभव; शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध। पांचों से जो व्यक्ति होते हुए इन्द्रियों के साधन उनके पास है तो भी, जीभ हो तो भी शब्द के बंधन में न आये। कान हो तो भी श्रवण के बंधन में ना जाये। नाक हो तो भी गंध गिरफ्तार न करे। हाथ और

इन्द्रियों हो तो स्पर्श न हों। आंखें हो तो भी रूप से अनजान रहे। पांचों पांच विषयों से जो बिल्कुल असंग रहे, बिल्कुल वर्जिन, ये कोई माँ ही हो सकती है। हम तो केवल चर्चा करें बाकी मुश्किल है। मैंने कल भी कहा कि यहां से जो बोला जाये, उसका शब्दमोह भी आपको न होना चाहिए वरना एक बंधन है, शब्द जकड़ लेंगे। बहुत मुश्किल है। ये माँ कर सकती है; उसके बस की बात है। क्योंकि उस परमतत्त्व को पाने के लिए सभी भोग छोड़ दिए, उसकी अंगरंग बात ये है कि उसने सभी विषयों से असंगता प्राप्त कर ली, इसलिए कन्याकुमारी है। शक्ति किसकी कन्या? शक्ति जब कन्या है तो वो किस रूप में कुंआरी हो सकती है? जिस शक्ति का अपने मन में तर्क-वितर्क न हो। कभी-कभी हमको लगता है कि परीक्षा में हम पास हो जायेंगे। कभी-कभी मन कहता है कि नहीं, नहीं, नहीं, इस बार पास होना मुश्किल है! कभी अपना सामर्थ्य लगता है। कभी दूसरी ही क्षण हम अपने को असमर्थ महसूस करते हैं। ऐसा मन में तर्क-वितर्क की सृष्टि जिसकी शक्ति के बारे में जिस साधक को न हो, उसकी शक्ति कुंआरी है। जरा कठिन पड़ेगा प्लीज़, पर शांत चित्त से सुनियेगा। सब में शक्ति है। कोई शक्तिहीन नहीं है; मात्राभेद है। लेकिन हमारी शक्ति हमें झुलाती है।

विवेकानंदजी ने अपनी शक्ति का निर्णय कर लिया कि मैं ये करके रहूंगा। मैं यहां से कूदूंगा। शिला पर जाकर तीन दिन बैठ गया। और मुझे क्या लक्ष्य साधना है उसका फिर उसके मन में न पक्ष में तर्क रहा, न विपक्ष में तर्क रहा। ऐसा शक्ति के बारे में जिसका मन हट गया है, उसकी शक्ति कुंआरी है। बड़ा मुश्किल है। करीब-करीब असंभव है। लेकिन माँ संभव कर सकती है। क्योंकि ये शक्ति है। और शक्ति को हमने तीनों रूप में देखते हैं। 'या देवी सर्वभूतेषु व्यक्ति रूपेण संस्थिता, शक्ति रूपेण संस्थिता, भक्ति रूपेण संस्थिता।'

सामर्थ्य होने के बाद जिसकी बुद्धि जिसकी बुद्धि व्यभिचारिणी न बने उसकी शक्ति कुंआरी है। शक्ति होने के बाद जिसका चित्त विक्षेप न हो उसकी शक्ति कुंआरी। अब असंभव है; करीब-करीब इम्पोसिबल है। लेकिन विवेकानंद जैसे महापुरुष कर सकते हैं। विवेकानंद से भी ज्यादा ठाकुर कर सकते हैं। विवेकानंदजी तो अपनी जीवनयात्रा में कई बार निरुत्साह भी हुए हैं। माँ काली के साक्षात्कार के बारे में कई बार उसके कदम थोड़े वो हुआ तो यहां के बाद उसके कदम आगे ही चल दिए। क्योंकि साधक की ऐसी गति होना स्वाभाविक है। शक्ति होते हुए

भी जिसको कभी अहंकार न आये उसकी शक्ति कुंआरी है। सामर्थ्य का अहंकार आया। सामर्थ्य होते हुए चित्त ने विक्षेप कर दिया। मेरा सामर्थ्य, मैं कोई भी निर्णय कर लूं, मुझे कौन रोकने वाला, समझना कुंआरी नहीं रही। और सामर्थ्य होने के बाद ठीक होगा, नहीं होगा, सफल होगा, जब ये डांवाडोल मनः स्थिति, ये बुद्धि, ये शक्ति कुंआरी नहीं। बहुत कठिन है। करीब-करीब असंभव। फिर भक्ति कुंआरी है। तो कन्याकुमारी व्यक्ति के रूप में समस्त विषयों से मुक्त रही इसलिए कन्या। शक्ति के रूप में न मन के तर्क वितर्क हुए, बुद्धि में कोई उहापोह हुआ, न चित्त ने विक्षेप किया। विक्षेप करनेवाले सप्तऋषि आदि आये तो उसको कह दिया कि आप शादी कराने का व्रत लेकर निकलें है तो कई कुंआरें धूमते हैं उसकी शादी करवा दो। मेरे से जिद्द मत करो। ऐसा उसने साफ़-साफ़ कह दिया। क्योंकि शक्ति के रूप में ये कुंआरी है और भक्ति के रूप में मैं जन्म शंभु के लिए हार चुकी। अब दोष-गुण का कौन विचार करे? अब कौन देखे? और फिर भी सरल करते कहूं कि भक्ति उसकी कुंआरी है जो नारद के भक्तिसूत्र में आते हैं, छह लक्षण, 'गुणरहितं कामनारहितं अविच्छिन्नं सूक्ष्मतरं अनुभवरूपं प्रतिक्षण वर्धमानं।' क्रम छूट जायेगा लेकिन ये छह हो गए।

जिसकी भक्ति गुणरहित है। गुरु चरण की रज से आंखें निर्मल हो जाये न तो दुनिया में सब चेहरे सुंदर लगने लगते हैं। 'गुर पद रज मृदु मंजुल अंजन।' उसके बाद के क्रम मैं आती है, पूरी दुनिया सियाराममय दिखने लगती है। वैसे जिसकी भक्ति कुंआरी है वो कुछ गुणविशेष पर आकर्षित नहीं होती है। ये गुणरहित हो जाती है। आकार में नहीं पड़ती, गुण में नहीं पड़ती। क्योंकि उसको कोई कामना नहीं। जिसकी भक्ति में कोई कामना नहीं वो भक्ति कुंआरी है। मेरे पास कई लोग आते हैं, बापू, बहुत समय पहेले बहुत भाव जगता था, अब भाव नहीं आते, अब आंसू नहीं आते! मैं समझता हूं कि आंसू नहीं आते इसका कारण ये है तेरे पास दूसरा (रूपया-पैसा) आ गया है! हो सकता है। ये तो केवल दृष्टान्त है। कुछ और आ जाता है। अविच्छिन्नं मेरी और आपकी धारा नहीं रह पाती।

प्रतिक्षण वर्धमान; जो प्रतिपल बढ़े ना वो भक्ति कुंआरी नहीं है। जो प्रतिपल बढ़े वो ही कुंआरी है। नित नूतन, और बढ़े, और बढ़े। सूक्ष्मतरं; स्थूल को न पकड़े, सूक्ष्म को पकड़े, वो भक्ति कुंवारी है। और आखिर मैं बड़ा प्यारा शब्द, अनुभव रूपम्, जो हमारे मन और इन्द्रियों के द्वारा अनुभव आ गया है वो अनुभवरूप ये भक्ति कुंआरी है। मुझे लगता है, मेरी माँ ये कन्याकुमारी हिमाचल पुत्री ये व्यक्ति के रूप में भी कुंआरी है, शक्ति के रूप में भी कुंआरी है और भक्ति के रूप में भी कुंआरी है। क्योंकि 'अति सुकुमारी न तनु तप जोगू।' अत्यंत सुकुमार देह तपयोग्य नहीं है फिर भी पतिपद का सिमरन करके सब भोग त्याग दिए। बाबा आगे बोले-

नित नव चरन उपज अनुरागा।
बिसरी देह तपहिं मनु लागा।।

नित्य नूतन अनुराग बढ़ने लगा पार्वती का। देह की सुधि ही न रही। देह सुधि रहती तो तो भूख लगती। देह में अवस्थित प्राण की सुधि रहती तो भूख-तरस का महसूस ही होती क्योंकि भूख-तरस तो प्राण के लक्षण है। सब सुधि गई। देह-प्राण की सुधि गई। देह की सुधि चली गई और मन तप मैं लग गया, डूब गया। आगे बोले-

संबत सहस मूल फल खाए।
सागु खाइ सत बरष गवाँए।।

एक हजार वर्ष तक हिमालय पुत्री ने कंद और फल खाये। कंद जमीन में होते हैं, फल आसमां में होते हैं। कंद सदैव गहरा रहता है। फल सदैव ऊंचाई पर होते हैं। बीचवाला सब अभी छोड़ दिया गया है। तप में इतना मन लग गया। एक हजार साल तक तप पूरा करने के लिए कंद और फल खाये। उसका अर्थ ये हो सकता है, मूल तपस्या की। और सकाम तपस्या है, फल हेतु तपस्या की। इसलिए फल और किसी लक्ष्य प्राप्त करने के लिए आप तप करें तो उसकी आलोचना नहीं होनी चाहिए। लेकिन मूल में तप होना चाहिए। मूल में तप न हो और फल की आकांक्षा ये नाटक है, ये दम्भ है। एक हजार साल तक ये अभ्यास हुआ; कंद और मूल-फल खाये। बाद में 'सागु खाई सत बरष गवांए।।' साग माने साग-भाजी। फिर मूल और फ़ल छोड़ दिए। फल की आकांक्षा भी छूट गई। सब छूटा। अब केवल शरीर टिकाना है इसलिए कुछ पत्ते, कुछ सब्जी वगैरह। कच्ची सब्जी खा ली। आगे बोले-

कछु दिन भोजनु बारि बतासा।
किए कठिन कछु दिन उपबासा।।

अब इस पंक्ति का अर्थ तो ये होता है कि कुछ दिन भोजन किया लेकिन किसका? बारि और बतासा। बारि माने जल और बतासा माने हवा। केवल जल और वायु का भक्षण

किया लेकिन शब्द 'भोजन'। भोजन किया कुछ दिन लेकिन हवा और पानी का, लेकिन यहां अंक नहीं लिखा। कुछ दिन पानी और वायु पर जी। यहां कोई अंक नहीं लिखा है कि एक महिना कि एक हजार साल। क्योंकि यहां अंक लिखना मुश्किल है। क्योंकि केवल वायु और पानी पर रहना उसमें कोई समय मर्यादा निश्चित करना कठिन है। इसलिए यहां कोई समय मर्यादा नहीं।

जहां कन्याकुमारी तप कर रही है वहां एक बेली का पेड़ था। शिव को पाना है। याद रखना, कुछ वृक्ष साधना के अनुकूल है। जिसको शिव को प्रसन्न करना है, यदि इस तरह साधना पद्धति में जिसको जाना है, उसके लिए बिल्वपत्र का-बेल का जो पेड़ है वो उपयोगी है। एक विशेष वृक्ष की साधना पद्धति में एक नियम है। पुरुषसूक्त का पाठ आप पीपल के वृक्ष के नीचे करो। पीपल विष्णुरूप है, उसके नीचे पाठ करो। 'दुर्गासप्तशती' का पाठ भी यदि आप बिल्वपत्र के आसपास, बेली पेड़ के आसपास आप कर सकें या तो बोर की जो बोरडी होती है उसके नीचे उसका अभिप्राय बताया गया है। भगवान की कथा साधना करनी है तो वटवृक्ष के नीचे बैठो। ध्यान करना है तो आम के पेड़ के नीचे बैठो, जहां भुशुण्डिजी करते हैं। तो शिव को पाने के लिए बहुधा साधना पद्धति में बिल्व-बेली का वृक्ष जो होता है। तो भवानी वहां बैठी है और बेली के सूखे पत्तें जो जमीं पर गिरते थे वो भवानी खा लेती थी और उसके बाद गोस्वामीजी कहते हैं वो भी छोड़ दिए। और पर्ण भी छोड़ दिए, बेली के पत्र भी छोड़ दिए, तब गोस्वामीजी कहते हैं, 'उमहि नामु तब भयउ उपरना।।' उमा का नाम अपर्णा हो गया। जगत की अन्नपूर्णा आज अपर्णा बन चुकी है। बिलकुल पत्ते खाना भी बंद कर दिए।

बेल पाती महि परइ सुखाई।
तीनि सहस संबत सोई खाई।।

पुनि परिहरे सुखानेउ परना।
उमहि नामु तब भयउ उपरना।।

एक हजार साल तक वो सूखे पत्ते खाये, उसके बाद पर्ण भी छोड़ दिए और तपक्षीण शरीर हो गया और गगन गिरा गंभीर हुई। आकाशवाणी बोली, हे कन्याकुमारी, हे हिमाचलकन्या, तुम्हारे मनोरथ पूरे हो गए। शिव से तुम्हारा व्याह होगा। पिता जब बुलाने आये तब घर चली जाना और हमारी बात को प्रमाणित तब समझना, जब सप्तऋषि तुम्हें मिलने आए। आकाशवाणी ने फलश्रुति कह दी। पार्वती को ये सब सूचना दी। ऐसा तप कन्याकुमारी का चला। उसको केन्द्र में रखकर कुछ बातें आपके सामने संवाद के रूप में रखी। अब थोड़ा क्रमशः कथा का क्रम लूं।

दंडकारण्य की यात्रा के दौरान भगवान राम की ललित नरलीला पर संदेह करनेवाली सती राम की परीक्षा करने के लिए जाती है। भगवान शिव तर्क शृंखला छोड़कर, हरि ने जो चाहा वो ही होगा इस विश्वास को लिए बैठ गए और हरिनाम का सिमरन करने लगे। अत्यंत विचार करने के बाद सीता का रूप लिया। राम-लक्ष्मण जानकी की तलाश में विरही बनकर के खोज रहे हैं और यहां सती सीता का रूप ले लेती है। सीधा-सादा सूत्र ये है कि रूप बदल सकते हैं, स्वरूप नहीं बदल पाता। सीता के वेश में सती को देखकर भगवान राम समझ गए कि वेश ही सीता का लिया लेकिन है तो सती जगदम्बा। भगवान ने अपने पिता दशरथ का नाम और अपने रघुवंश का गोत्रोच्चार करते हुए सती को प्रणाम किया। हमारे पिताजी वृषकेतु कहां है? आप शिव को छोड़कर अकेली क्यों धूम रही हो? पहचान गए ठाकुर। इतने शब्द काफ़ी थे। सती समझ गई कि ये सर्वज्ञ ब्रह्म है। एक शब्द तक न बोल पाई और विफल हो कर सती लौट आई। भगवान की तो ये ललित नरलीला थी। प्रभु ने सोचा कि मेरा ऐश्वर्य उसको एक बार दिखा दूं ताकि भविष्य में संदेह न करे। अकुला गई और

कोई भी बुद्धपुरुष के वचन सगर्भ होते हैं और सहेतु होते हैं। तुम्हारे मन में किसी बुद्धपुरुष में आस्था है तो उसके वचन के अधिकारी आपको होना चाहिए। और ये समझना कि गुरु ने मुझे डांटा तो बुरा मत मानना, उसके पीछे कुछ हेतु है। गुरु के वचन का हेतु आप न पकड़ पाओ तो वेस्ट करो क्योंकि गुरु के वचन सगर्भ है। समय आते ही कुछ निकलेगा। ये सगर्भ है। तलगाजरडा एक शब्द और जोड़ना चाहता है। गुरु के वचन सतर्क होते हैं। सतर्क का एक अर्थ है तर्कयुक्त। बौद्धिक भी होते हैं और दूसरा, सतर्क माने जागृत होते हैं; सावधानी से बोले गये शब्द।

परमात्मा ने अपना ऐश्वर्य दिखाकर कह दिया कि मैं संयोग-वियोग से परे हूं। ये लीला है। नेत्र बंद करके सती बैठ गई। भगवान ने अपने ऐश्वर्य समेट लिया और जब आंखें खोली तो कुछ नहीं देखा! एक पीड़ा लेकर लौट रही है कि क्या करूं? अब शिव के पास जाकर मैं कैसे बताऊं? मन में बहुत पीड़ा हुई कि मैंने शंकर की बात मानी नहीं। एक दाह, एक संताप हृदय में प्रकट हुआ।

भगवान शिव हरि स्मरण में थे और सती आकर के खड़ी रही। भगवान ने देखा, सती आ गई है तो मुस्कुराकर के हंसकर के कुशलता पूछी, आप कुशल हैं? सती झूठ बोली अथवा तो छिपाया जो कहो। भगवान, मैंने कोई परीक्षा नहीं की। आपने प्रणाम किया वैसे मैंने प्रणाम किया। शिव को लगा कि कुछ छिपाया जा रहा है। तुरंत महादेव ने ध्यान में देखा तो सती ने जो कुछ किया वो जान लिया। सीता का रूप लेकर गई। प्रभु पहचान गए। लेकिन उदार करुणामूर्ति शिव ने न कोई डांट की, न कोई कुछ किया। लेकिन भगवान शिव जरा चिंतित जरूर हुए। सोच रहे हैं महादेव कि अब मैं सती से प्रीत करूं, अब जो गृहस्थ सम्बन्ध रखूं तो भक्ति का मार्ग मिट जाएगा। भगवान शंकर सोचने लगे कि मुझे क्या निर्णय करना चाहिए इस समय? सती से सम्बन्ध रखूं? क्या करूं? सती को छोडूं? गोस्वामीजी बहुत व्यावहारिक बात लिख देते हैं; राम का सुमिरन करने लगे कि हरि, तू निर्णय दे। मन में उसने राम को प्रकट होने दिया और राम की प्रेरणा से ऐसा निर्णय आया अंदर से कि जब सती का ये देह होगा तब तक मेरा और उसका कोई गृहस्थ सम्बन्ध नहीं रहेगा। क्योंकि ये शरीर में उसने वेश बदला है। सीता बनकर गई। सीता तो मेरी माँ लगती है। कल्याणकारी संकल्प किया भगवान ने। आकाशवाणी हुई, धन्य हो महादेव, आपके समान भगवान की भक्ति को कौन इतना अखंड रख सकता है? अब सती पूछ रही है, आपने कौन-सा संकल्प किया है? और शिव को लगा कि मैं बोलूं कि मैंने आपका ये शरीर जब तक आपका हो तब तक आपका त्याग कर दिया है तो दु:खी होगी। सती पूछती रही। भगवान विषयांतर करके, रास्ते में विध-विध इतिहास की कथा सुनाने लगा।

नियम तो ऐसा है मेरे भाई-बहन कि राम के दर्शन से संशय पैदा होते हैं और रामकथा के श्रवण से संशय समाप्त हो जाते हैं। सीताजी के सामने अशोक वाटिका में श्री हनुमानजी महाराज प्रगट हुए और वो जब बताने लगे तो सीता संदेह करने लगी कि ये बंदर है, राम और तुम्हारा भेंट कैसे हुआ? ये कैसे घटना घटी? बहुत संदेह कर रही है। भगवान की कथा सुनी नहीं, वरना संदेह करती नहीं। कथा सुनने से संदेह का समापन होता है। अथवा तो शिव को लगा कि सती कथा की अधिकारिणी नहीं है। अधिकार होता तो सती कुम्भज के आश्रम में ही कथा सुन लेती। तो ये कोई झंझट नहीं होती। कथा सुनने को मिले ये भगवत्कृपा है। आपकी सराहना करने का कोई उपक्रम भी नहीं है; कोई कारण भी नहीं है। लेकिन भगवान की कथा आप सुनते हैं, मैं सुनता हूं, बोलते हैं, मैं भी तो सुनता हूं, सब सुनते हैं। ये भगवत्कृपा है। कथा का अधिकार मिल जाये, कथा का आयोजन मिल जाये, कथा का श्रवण मिल जाये, कथा का गायन मिल जाये, खबर नहीं, अपना नहीं तो कोई पूर्वजों का पुण्य का परिणाम है। सती इतने बड़े बाप की बेटी है लेकिन कथा का अधिकार गंवा बैठी। पहले से ही चुक गई।

विश्वनाथ कैलास पहुंच गये। अपने शिव संकल्प का स्मरण करते ही भगवान भवन में न गये। अब लोग कहते हैं, कैलास पर कहां भवन है? भवन तो है नहीं। जो-जो कैलास गये सबको पता है, वहां कोई भवन नहीं। भवन में नहीं गये मीन्स सांसारिक सम्बन्ध में न गए। रिश्ता एक डिस्टन्स हो गया। बैठ गये शंकर। भगवान ने स्वरूप अनुसन्धान किया। सद्गुरु का रूप नहीं होता है, स्वरूप होता है। शिव का कोई रूप नहीं। ये तो मंदिर हम बनाते हैं, मूर्ति बना लेते हैं, बात ओर है। बाकी शिवलिंग कोई रूप का प्रतीक नहीं है। एक निराकार स्वरूप का संकेत है शिव। भगवान शिवजी ने कैलास पर सहज स्वरूपानुसन्धान किया और अखंड अपार समाधि लग गई। शिव समाधि में, सती उपाधि में। सती बहुत दु:खी हुई। शरीर क्षीण होने लगा। सत्तासी हजार साल बीत गए। इतने सालों के बाद समाधि का त्याग किया और भगवान शिव 'राम राम राम' बोलने लगे। मैं कहता रहता हूं कि सत्तासी हजार साल की समाधि का फल रामनाम। पहले से ही लेना शुरू कर दो ना तो समाधि, उपाधि सब खत्म हो जाये यार! आप कल्पना करो, रामनाम के प्रताप से समाधि भी चली जाती है तो उपाधि न चली जाये? सीधा-सा गणित है। उपाधि तो बिल्कुल सामान्य चीज है। राम की तुलना में समाधि भी गौण है।

पार्वती व्यक्तिरूपा, शक्तिरूपा और भक्तिरूपा है

प्रतिदिन की भांति हमारे परम स्नेही पाठकजी, आपकी बहुत सराहना हो रही है। सब मुझे लिखते हैं कि ऐसा संचालन करनेवाला हमने कम देखा है। जितना चाहिए इतना ही बोलकर चला जाता है। और फिर बहन भारती अंग्रेजी में वो भी संक्षेप में, ज्यादा लम्बा न हो ऐसा करके सार कह देती हैं। सबको बहुत-बहुत साधुवाद।

कुछ शिकायतें भी है। एक भाई ने कल शिकायत की थी कि मैं भी आपका एक फ्लावर हूं। लेकिन जब आप मेरे प्रश्न का उत्तर दे रहे थे तब आप जिस अंदाज से बोलते हैं, तो मेंने मेरे वीडियो में उसको रेकोर्ड करना चाहा तो किसी ने उसको ले लिया कि ये कोपीराइट केवल ट्रस्ट का है। आप उसकी वीडियो नहीं कर सकते। और ये मैंने वो कैमरा उसको दे दिया और मैं वो वापिस नहीं लूंगा, जब तक आप खुलासा न करें।

मैं प्रत्येक सवाल के जवाब के लिए नहीं हूं। साधु जवाब नहीं देता, साधु जागृत करता है। फिर भी आप मेरे हैं तो ऐसा हुआ तो आपका कैमरा वापिस लौटा दिया जाये और आप भी विनम्रता से ले ले, जिद्द न करे। और मैं तो ये कहूं कि ठीक है, आप कुछ कर लो, फोन में भी आप कुछ वाक्य लिख लेते हो, लेकिन कथा का हेतु समझकर कथा मैं बेठियेगा। मैं एक-एक पल आपके लिए बहुत गंभीरता से देता हूं तब ये कथा फोन में बात करने के लिए नहीं है, खबरदार! ये कथा फोन में इधर-उधर देखने के लिए नहीं है। यदि इसका सदुपयोग करके आप कुछ लिख लेते हैं ये तब तक ठीक है। लेकिन यहां बैठकर ओर कामों के लिए आपको विनम्रता से कहूं, इज़ाज़त नहीं है। और यदि आपको ऐसा करना है तो पीछे बैठिये, आगे तो मत ही बैठिये। कथा की कुछ मर्यादाएं है। व्यवस्थापक को भी सहयोग करो और सेवा में लगे इनको भी मैं कहूं कि ये केवल धर्म सम्मेलन नहीं है। ये हो-हा करने के पंडाल है ही नहीं। बूढे-बुज़ुर्ग हो तो उसको आदर दो। उसको

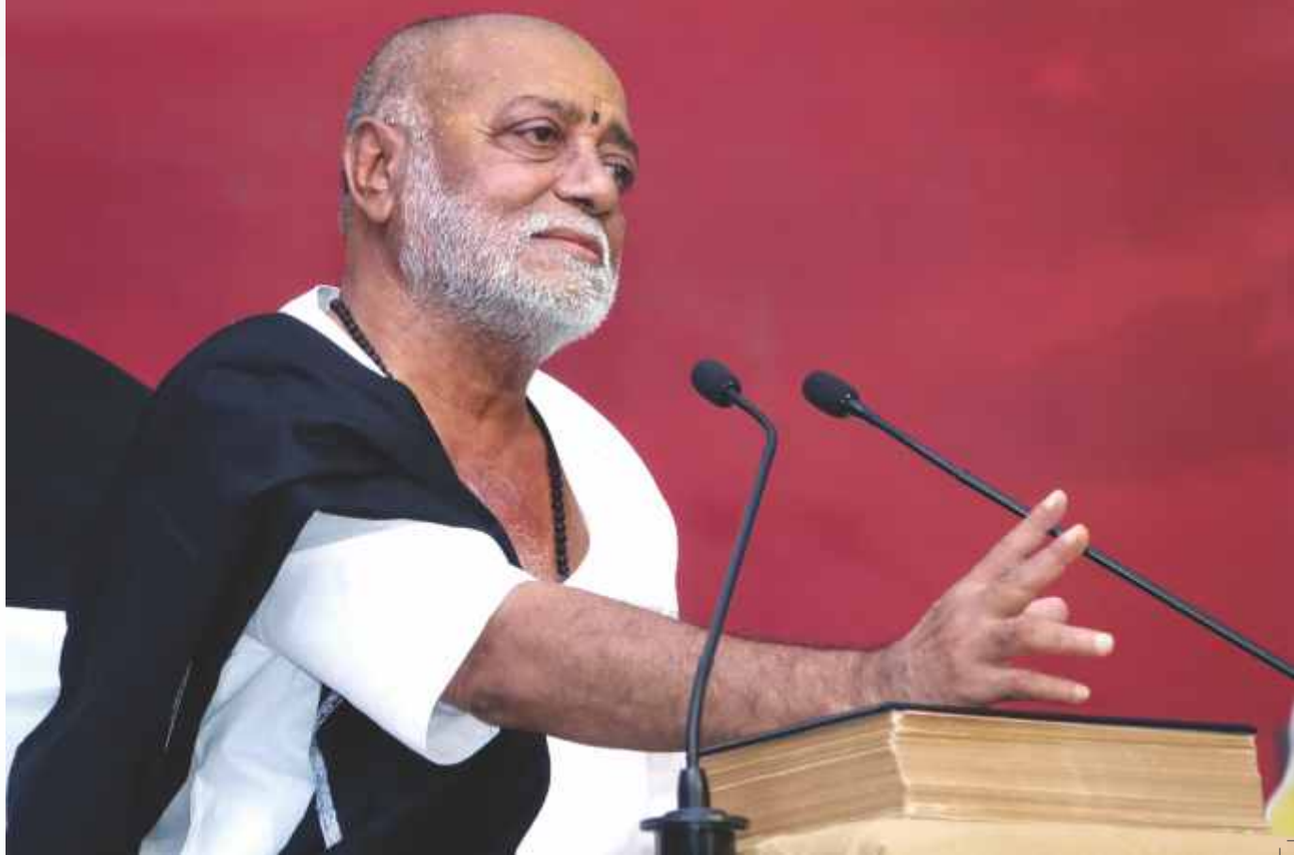

संभालकर मंडप में बिठाओ। मुस्कुरा के सबका स्वागत करो। मुझे एक आचारसंहिता बनानी है, यस। उस पर चिंतन कर रहा हूं कि आयोजकों को कितने नियम निभाने हैं; मुझे कितने निभाने हैं; श्रोता को कितने निभाने हैं; व्यवस्थापकों को कितने निभाने हैं। इस कथा की बड़ी सराहना की जा रही है कि बापू, हर प्रकार की सुविधा इस कथा में सराहनीय है लेकिन कभी-कभी, कहीं-कहीं संवेदना का अभाव दिखता है।

मेरे लिए भी इतनी बड़ी सुविधा हद से ज्यादा न करो। मैं खुल्ला कह रहा हूं। मैं सीधा-साधा आदमी हूं, रहने दो ना! मेरे लिए एक कमरा हो; स्नानगृह साथ में हो; क्लीन हो; मेरे तीन पेर कपड़े हो। मेरी कुटिया की आप सरप्राईज़ विज़िट लीजिए। यद्यपि कोई जाने नहीं देंगे! लेकिन मेरे लिए कोई ज्यादा खर्चा करे तो मुझे रास नहीं आ रहा है, समझ लो। मैं कुछ छूट दिये रहा हूं। मेरी तस्वीरें बिकें वो भी मैं पसंद नहीं करता! मैं बिकाउ आदमी हूं ही नहीं। मैं कोई तथाकथित धर्मावलम्बी ईन्सान ही नहीं हूं। आप मुझे थोड़ा पहचानो। इतनी मेरी प्रार्थना है। ओर कुछ नहीं चाहिए।

एक भाई ने लिखा है कि 'बापू, क्या आत्मसम्मान खोकर रामकथा सुननी चाहिए?' आत्मसम्मान के लिए कथा में मत आओ, आत्मभान के लिए कथा में आओ। आत्मसम्मान के लिए आते हो तो जाओ कोई सोसायटी में; जाओ कोई क्लबों में। यहां तो आत्मभान के लिए हम बैठे हैं। यहां कौन-सा आत्मसम्मान? मेरे पास भी लोग होते हैं, मेरे सम्मान के लिए नहीं, व्यवस्था के लिए होते हैं। आज तक मैंने किसी की, कहीं भी नियुक्ति नहीं की है, ये याद रखो। मेरे साथ संगीत में एक वल्लभदासभाई था। मैं नवरात्रि में बोलता था तो हार्मोनियम बजाता, बापू बजाऊं? मैंने कहा, बजा। तो बजाने लगा। फिर कथा में हमारा विनुभाई जोडिया से बजाने लगा, बजाने लगा। किसी को विशेष न्योता नहीं था। ये दिला कब आ गया, कीर्ति कब आ गया, पंकज कब आया? ये सब आ गये कथाप्रवाह में। किसी की नियुक्ति नहीं है। हां, कभी-कभी मैंने जरूर किया जैसे कि हमारे गांधर्वजी चले गये तो फिर मैंने ये हितेश को कहा कि बेटा, तू बजाता हो तो आ। ये कोई नियुक्ति नहीं है। मेरे साथ रसोई करने में तिलक महाराज कब आये? खबर नहीं। आ गया, आ गया। संतराम कब आ गया, खबर नहीं। आ गया। कोई नियुक्ति नहीं। मैं केवल अकेला हूं। लेकिन कथाप्रवाह में सब आ गये, आ गये, आ गये, सब। ये प्रभु का गायन करने के लिए सब जुड़ गये, आ गये प्रवाह में। बाकी किसी का हमने वरण नहीं किया कि तुम आ, तुम आ, तुम आ। मेरे साथ सब समानभाव से आते हैं। मैं चलता हूं सबका आदर किये। कोई ये न कहे कि हमारे बिना चलेगा नहीं। तुम्हारे बिना प्यारों मेरा जन्म-जन्म से चल रहा है और जन्म-जन्म तक चलेगा। एक मिनट।

कोट रे कायाना बेली! खळभळ्या.
काळे चांपी रे सुरंगो.
खांगा थया रे कोठाकांगरा,
डूक्यां उधमाती अंगो.
पहोळा पथारा चोगम पाथर्या,
जाते लियो रे संकेली.

- नाथालाल दवे

'बापू, क्या आत्मसम्मान खोकर रामकथा सुननी चाहिए? बापू, अमृतसर की एक ब्यासी साल की बुजुर्ग माता, जो अपनी कथा की बड़ी दीवानी है। उसकी कथा लालसा पूरी करने कन्याकुमारी की कथा में वो आई है। जहां वो रही है वो पंडाल की दूरी करीब नव किलोमीटर है। चल नहीं पाती और उसको ओटो रिक्शा पंडाल तक ले नहीं जाने देते।' यहां कुछ आश्रम का भी अनुशासन है। केवल आयोजकों का नहीं, आश्रम की भी कुछ मर्यादा है। इसलिए आपको रोका होगा, हो सकता है। 'अब हम क्या करें बापू? आत्मसम्मान खोकर कथा सुनें? या सम्मान पूर्वक अपने घर लौट जाए?' 'यथा योग्यं तथा कुरु।' ये आपकी मर्जी है। आत्मसम्मान यदि आपके जीवन का प्रधान है तो आपको जाना चाहिए। और आत्मभान, आत्मजागृति लेनी है तो आत्मसम्मान को किनारे पर रखकर तप करो, ये कथा सुनो।

कल सांयकाल को हमारे परम स्नेही अमितोष भैया ने सुंदर गज़लें सुनाई। और तबलावादक भी बहुत मुस्कुराता हुआ तबला बजा रहा था। और बेटी ने भी अच्छी दो गज़ल सुनाई। और पाठकजी ने सुंदर सुचारु रूप में संचालन किया। हमारे पंकजसाहब ने तरन्नुम में, बिलकुल खुमारसाहब, जिस रूप में ज्यादातर कहते हैं।

मेरे राहबर मुझको गुमराह कर दे,
सुना है कि मंज़िल करीब आ रही है।
चरागों के बदले मकां जल रहे हैं,
नया है जमाना नई रोशनी है।

'मानस' ये तो मेरा मुशायरा है, आध्यात्मिक मुशायरा। यहां कोई परहेज नहीं है साहब! इसलिए बाप! सम्मान के साथ आओ और यदि आपको लगे कि सम्मान को कोई ठेस लगी तो आपके घर में आये हो। घर में क्या बुरा लगाना? किसका बुरा लगाना? सब अपने हैं। आनंद करो, मौज करो। लेकिन यदि श्रवण आपका हेतु है, आत्मभान यदि आपका हेतु है तो विशिष्ट रूप से कुछ प्रसन्न चित्त से सुनें।

कल रात को एक चिठ्ठी मिली उसमें एक बहन ने लिखा, इसमें भी शिकायत ही थी। 'बापू, ठीक से जगह नहीं मिलती है तो फिर अगल-बगलवालों पर बहुत गुस्सा आता है। कोई उपाय बताए।'

प्रश्न तो इस माताजी का है लेकिन मैं कहूं, आपको बहुत कामना सताएं तो मेरी व्यासपीठ को सुनो। खूब नामस्मरण करो। सम्यक् हो जाएगी कामना। निर्मूलन की जरूरत नहीं है, सम्यक् करने की जरूरत है। और जब आपको बहुत क्रोध सताये तो क्रोध मन में है तब तक ठीक है, देह तक मत जाने देना। क्रोध जब मन से देह तक जाता है तो वो ही देहकेन्द्रित क्रोध कभी-कभी हिंसा कराता है। देहकेन्द्रित क्रोध किसी को थप्पड़ मार देता है। देहकेन्द्रित क्रोध कभी कुछ का कुछ, अशुभ कर देता है। इसलिए एक प्रयोग करे मेरे भाई-बहन, कथा में आये हो। भगवान करे, क्रोध न आये। आख़िर हम जीव हैं तो कुछ न कुछ बात में सबको क्रोध तो आ जाये तो आ जाये। कामना हो, लोभ हो। लेकिन क्रोध आपको आता है अगल-बगलवालों पर तो आप इस क्रोध को आप के मन तक सीमित रखे, देह तक न आने दे। क्रोध जब आये क्रोध मन में आता है। क्रोध बुद्धि में आता है। तुलसी का मनोविज्ञान कहता है, क्रोध द्वैत बुद्धि की पैदाइश है। क्रोध है बच्चा द्वैत का। जब हमें दूसरा दिखता है तब क्रोध आता है। आप बैठे है वहां दूसरे बैठ गए हैं इसलिए आपको क्रोध आएगा लेकिन आप जहां बैठे हैं वहां आपका ही भाई आकर बैठ जाये तो आपको क्रोध नहीं आयेगा। तो बाप! क्रोध है द्वैत की संतान और द्वैत होता है मूढ़ता के कारण। द्वैत है मूढ़ता की संतान। 'क्रोध की द्वैतबुद्धि बिनु, द्वैत की बिनु अग्यान।' तुलसी का मानसशास्त्र, तुलसी का मनोविज्ञान।

तो एक प्रयोग करें। अत्यंत कामनाएं परेशान करें तब रामनाम आश्रय लें। रामनाम को आप सामान्य मत समझो प्लीज़। रामनाम पतन नहीं होने देता। कामनाएं विकार उकसायेंगी लेकिन पतन तक रामनाम नहीं जाने देता। कोई भी नाम। और क्रोध बहुत सताये तो देह तक मत आने देना; और मानसिक क्रोध देह में प्रविष्ट न हो जाए इसलिए क्रोध आये तब श्वास की गति मंद कर दो। क्रोध को नष्ट करने की कोशिश मत करो। लेकिन वो दूसरे दरवाजे में प्रवेश न करे इसलिए श्वास मंद करो। जो साधक क्रोध के समय श्वास की गति मंद करता है उसका क्रोध शरीर में प्रवेश नहीं कर पाता। और शरीर में प्रवेश नहीं कर पायेगा क्रोध तब आप किसी से फ़िज़िकल रूप में संघर्ष में नहीं उतरोगे। आप पर कंट्रोल आयेगा। और लोभ तो अपार। गोस्वामीजी ने उसको गंभीरता से लिया है। तो लोभ जब सताए तब ये तुलसी ने बताया कि जैसे धनवाला रूपये का लोभ करता है, मैं हरिनाम सुमिरन का लोभ करूं कि मैं और नाम रटूं।

तो कथा के सन्दर्भ में जो एक जिज्ञासा आज आई वो है कि बापू, कन्याकुमारी की तपस्या और शिव की समाधि उसमें साम्य क्या है और अंतर क्या है? बड़ा प्यारा क्वेश्चन है। यद्यपि समाधि के लिए भी पतंजलि के प्रयोग के अनुसार चलें तो पहले सात सीढ़ी चढ़नी पड़ती है। संयम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा। ये सात के बाद जो उपलब्धि है उसी का नाम है समाधि। लेकिन कबीर आदि महापुरुष इन सोपानों को ज्यादा पसंद नहीं करते। वो कहते हैं, 'साधो सहज समाधि।' शंकर की समाधि सहज है। कन्याकुमारी की तपस्या, उसको कुछ करना पड़ा है। वहां तपस्या में करना है, समाधि में होना है।

तप करना पड़ता है। समाधि सहज हो। जिसको निर्विकल्प समाधि कहते हैं, वो सहज हो। पार्वती की तपस्या कुछ भिन्न है। पार्वती की तपस्या में तो नित नूतन अनुराग बढ़ रहा है। वर्ना तपस्या आदमी के अनुराग को सूखा देता है और आदमी को स्वयं को रूखा-सूखा बना देता है। तपस्वी ज्यादा मुस्कुरा नहीं पाते हैं, श्राप देते हैं। पार्वती की तपस्या कुछ विलक्षण है। पार्वती ने-कन्याकुमारी ने तीन काम किये हैं। एक तो मैंने कल आपके सामने रखा था व्यक्ति, शक्ति और भक्ति। पार्वती हिमालय के घर जन्म लेती है। बड़ी होती है। उत्सव होता है। नारद आदि संत आये। उसकी भविष्य की बातें कही। नामकरण किया। ये सब पार्वती को केन्द्र में रखकर 'मानस' में जो कथा है वो पार्वती व्यक्ति है। लेकिन चार हजार और एक सौ साल पार्वती ने तप किया। अब आप सोचो मेरे भाई-बहन कि कन्या ने चार हजार और एक सौ साल तो तप

किया तो शादी किस साल में हुई? जरा कलियुग की मानसिकता में बैठनेवाली बात तो नहीं है। और व्यासपीठ का वक्तव्य याद करे फिर मेरे भाई-बहन, पार्वती दक्ष की कन्या है तब तक वो बुद्धि है। हिमालय की कन्या है तब वो बुद्धि नहीं है, श्रद्धा है। और श्रद्धा जितनी लम्बी होती है इतनी जवान होती है। यहां जो तप कर रही है कन्याकुमारी जिसने चार हजार एक सौ साल तप किये वो श्रद्धा है। और श्रद्धा जितनी पुरानी होती है इतनी नित नूतन होती है। तो कन्या के रूप में पार्वती है; व्यक्ति के रूप में है। जब नामकरण हुआ, हिमालय की बेटी, मैना की बेटी, उसने जो सब किया, ये सब कन्यारूप है। फिर यहां उसने जो तप किया वो पार्वती केवल कन्यारूप नहीं है, व्यक्तिरूप नहीं है, ये शक्तिरूप है। इतना कठिन तप, ये शक्तिरूपा पार्वती है। और तपस्या के बाद जब उसकी कसौटी की गई सप्तऋषियों के द्वारा, वो पार्वती शक्तिरूपा भी नहीं है, व्यक्तिरूपा भी नहीं है, वो पार्वती भक्तिरूपा है; शरणागत पार्वती है। तीन रूप में हैं ये।

अब कन्यारूप में वो श्रद्धा है। दक्ष की कन्या बुद्धि है। और श्रद्धा जितनी कुंआरी हो, इतनी कीमती है। यद्यपि 'गीता' ने त्रिविधा भवति श्रद्धा कहा है। तीन प्रकार की श्रद्धा-राजसी, तामसी, सात्त्विकी। लेकिन तलगाजरडी जो अभिप्राय है वो साफ़ है, मैं उसी श्रद्धा का साधक हूं जो गुणातीत श्रद्धा हो, कुंआरी हो। ऋग्वेद में एक मन्त्र है श्रद्धा के बारे में। आज सुबह-सुबह जब मैं यहां आने को तैयार हुआ तो मेरे मन में ये बातें टकोरा मार रही थी तो मैंने सोचा, उसी मन्त्र से आज मैं शुरू करूं कथा को। तो फिर मैंने वो मंत्र लिख लिया। वो मन्त्र मैं बोलूं और आप भी बोलो। और एक कुंआरी श्रद्धा यही कन्याकुमारी है, उस पर हमारा चित्त केन्द्रित हो। प्लीज़, एक-एक शब्दब्रह्म मैं बोलूं फिर उसी रूप में सुनकर के आप भी उच्चारण करें। बड़ी तपस्थली है। एक वेदघोष से वातावरण ओर विशेष पवित्र हो जाये।

श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः।।

ऋग्वेद का ऋषि कहता है, मैं गुणातीत श्रद्धा में, कुंआरी श्रद्धा लेकर प्रातःकालीन साधना करता हूं। लेकिन कुंआरी; न मेरी सुबह की श्रद्धा-उपासना में रजोगुण है, न तमोगुण है, न सतोगुण है। मैं श्रद्धा लेकर, कुंआरी श्रद्धा लेकर मध्याह्न संध्या करता हूं लेकिन कुंवारी श्रद्धा लेकर। मैं उसी कुंआरी श्रद्धा लेकर के सूर्यास्त होता है और सांध्यकालीन संध्या करता हूं। तीन रूप में श्रद्धा का उल्लेख भगवान वेद ने किया।

तो बाप! श्रद्धा के रूप में ये कुंआरी है और श्रद्धा जितनी दीर्घकालीन है इतनी जवान है। आपके परिवार में बच्चों में, इनके बच्चों में, इनके बच्चों में परम्परा में गुणातीत श्रद्धा यदि रही है तो बहुत जवान होगी। वो कुंआरी ही रहेगी। वो कुंआरी पूजी जाएगी। तो श्रद्धा के रूप में, ये लम्बी साधना करते हुए भी जवान है। वो भवानी ने तपस्या की। तपस्या में कुछ करना पड़ता है। समाधि सहज होती है। तपस्या का फल मिलता है। यद्यपि समाधि का भी फल दिखाया गया है। 'सत्यं अनंतं ब्रह्मं आनन्दं सर्वोपाधिकं विनुर्मुक्तं।' ये सब समाधि के फल उपनिषदों ने उद्घोषित किये हैं। तुम्हारी समाधि के ये फल है। तुम्हें सत्य की उपलब्धि हो जाये। और कामचलाऊ सत्य नहीं, अनंत अनंत सत्य की उपलब्धि हो जाये समाधि से। समाधि से ब्रह्म की उपलब्धि हो जाये और समाधि से अखंड आनंद की उपलब्धि हो जाये। ये भी एक पक्ष है। फिर कोई उपाधि न बचे। ऐसी समाधि कि जिसके बाद कुछ न बचे। तो तपस्या से समाधि की उम्र लम्बी बताई गई।

बीतें संबत सहस सतासी।
तजी समाधि संभु अबिनासी।।

तप आदमी को कृश करता है। पार्वती का शरीर क्षीण हुआ है तप के कारण। समाधि आदमी को पुष्ट करती है। ये माँ की तपस्या तो बिलग है, लेकिन तप आदमी की मुस्कुराहट छीन लेती है। मैं बार-बार बोला हूं, जो बहुत उपवास करते हैं वो कभी मुस्कुराते नहीं, याद रखना। तप आदमी को खुद तपाता है और उसके कारण दूसरा तप नहीं करता है, मैं इतना तपस्वी; दूसरा इतना रागी है, विषयी है, इस द्वैत के कारण बड़े-बड़े तपस्वी को क्रोध आया है। और क्रोध आने के कारण बड़े-बड़े तथाकथित तपस्वियों ने जमाने को श्राप दिए हैं। शिव की शाश्वत समाधि है। समाधिवाला क्रोध नहीं करता है। तप के पीछे फलश्रुति का विचार होता है। कुछ लक्ष्य-साध्य है उसका। निर्विकल्प समाधि उसको कहते हैं, वहां कुछ नहीं है। तपस्या में तो कुछ संकल्प-विकल्प उठते हैं। लेकिन फिर भी पार्वती की तपस्या मेरी दृष्टि में बिलग है। क्योंकि उसका अनुराग बढ़ा है तप के कारण।

भवानी और शंकर का चरित्र जो याज्ञवल्क्यजी कहते हैं उसमें एक ही प्रसंग में दो बार आकाशवाणी हुई

है। एक आकाशवाणी बिलग करने की सराहना कर रही है। दूसरी आकाशवाणी जोड़ने की युक्ति पेश कर रही है। जब सती भगवान राम की कसौटी करने गई शंकर के पास छिपाया और भगवान शंकर ध्यान में समझ गये कि सती छिपा रही हैं और राम का सुमिरन किया और वहां उसी समय शंकर के इस निर्णय के बाद तुरंत गगनवाणी होती है। वाणी सात प्रकार की होती है बिलग-बिलग सदर्भ में। 'मानस' में अब जो पार्वती की तपस्या के बाद वाणी होती है उसमें गोस्वामीजी ब्रह्मवाणी कहते हैं। एक दूसरा नाम दे दिया है ब्रह्मवाणी। शिव ने जब सती का त्याग किया तब गगनवाणी है। तो एक तो आकाशवाणी; दूसरी बह्मवाणी; तीसरी देववाणी; चौथी वेदवाणी। और मेरी व्यासपीठ लोकवाणी को बहुत महत्त्व देती है, लोकसाहित्य को बहुत महत्त्व देती है, लोकविद्या को बहुत महत्त्व देती है। तो आकाशवाणी, ब्रह्मवाणी, देववाणी, वेदवाणी, लोकवाणी, अंतर्वाणी। आदमी के अंतःकरण की प्रवृत्ति के द्वारा जो आवाज़ उठती है उसको अंतर्वाणी कहते हैं। और सातवीं मेरी दृष्टि में मेरे स्वभाव में सबसे श्रेष्ठ वाणी है वो गुरुवाणी है। आख़िरी, गुरुवाणी। 'मानस' में प्रगट-अप्रगट रूप में सातों वाणी का उल्लेख गोस्वामीजी ने किया है। और जिसको मैं बहुत महत्त्व देता हूं वो गुरुवाणी। 'गुरु' शब्द बोलूं तब मेरा लक्ष्य सद्गुरु है। लेकिन 'गुरु' शब्द ये स्वाभाविक मैं बोल रहा हूं लेकिन उसी समय आप याद रखें कि आप इस ऊंचाई का अहसास करें, सद्गुरु, गुरुवाणी। वो उज्जैन के महाकाल के मंदिर में जो वाणी हुई है। तलगाजरडा के मत के अनुसार जो महाकाल के मंदिर में वाणी हुई है वो भी गुरुवाणी। क्योंकि त्रिभुवन महादेव की वाणी उसी समय उच्चारित हुई है और तब जाके 'रुद्राष्टक' गाया गया। इसलिए आइये, एक-दो बंद 'रुद्राष्टक' गाया जाये-

निराकारमोंकारमूलं तुरीयं।
गिरा ज्ञान गोतीतमीशं गिरीशम्।
करालं महाकाल कालं कृपालं।
गुणागार संसारपारं नतोऽहं।।

वेदों ने भी सप्तवाणी की बातें कही है। लेकिन प्रगट-अप्रगट रूप में 'मानस' की ये सप्तवाणी, इसमें सर्वोत्तम वाणी, ये है सद्गुरु वाणी। तो आकाशवाणी हुई, हे हिमाचल कन्या, तुम्हारे मनोरथ सफल हो गए। जिसको पाने के लिए आपने कठिन तपस्या की वो फलित हो गया। आपके सभी कलेश खत्म हो गए। भगवान शिव से आपका ब्याह हो जाएगा। उसके बाद की पंक्ति गोस्वामीजी उठाते हैं।

अस तपु काहुँ न कीन्ह भवानी।
भए अनेक धीर मुनि ग्यानी।।
अब उर धरहु ब्रह्म बर बानी।
सत्य सदा संतत सुचि जानी।।

हे कन्याकुमारी, इस संसार में, ब्रह्मवाणी बोल रही है कि कई धैर्यवान लोग हुए, कई मुनीश्वर हुए, कई ज्ञानी हुए। लेकिन हे कन्याकुमारी, ऐसा तप आज तक किसी ने नहीं किया। अब आप ऐसा करो, हे पार्वती, तुम्हारे पिता तुम्हें बुलाने आये आकाशवाणी ने कहा, ब्रह्मवाणी ने कहा, तो हठ छोड़कर के घर चली जाना। अब जिद्द मत करना। तुम्हारा काम पूरा हो गया। बाबा बोले-

मिलहिं तुम्हहि जब सप्त रिषीसा।
जानेहु तब प्रमान बागीसा।।

ब्रह्मवाणी का प्रताप ये है देवी कन्याकुमारी कि जब तुम्हें सप्तऋषि सामने से मिलने आये तब समझना कि ये वाणी प्रमाणित है और घर चली जाना। आगे बोले-

सुनत गिरा बिधि गगन बखानी।
पुलक गात गिरिजा हरषानी।

आकाशवाणी की ये बात सुनकर भवानी का शरीर पुलकित हुआ। पार्वतीजी प्रसन्न हुई। गोस्वामीजी प्रसंग बदल देते हैं। पूरा प्रसंग कन्याकुमारी का ही है लेकिन बीच में शंकरचरित्र आता है। फिर वो तंतु जुड़ता है जब भवानी की सप्तऋषि कसौटी करने जाते हैं तो फिर तीसरा रूप। पहला कन्या व्यक्तिरूप, दूसरा शक्तिरूप, शक्तिरूप भी यहां पूरा हुआ। अब बाकी रहा भक्तिरूप जिसमें नितांत शरणागति की उद्घोषणा कन्याकुमारी के मुख से तुलसी ने करवाई। तो बीच मैं अब जोड़ रहे हैं शम्भुचरित्र। हम भी उसका थोड़ा दौर संभाल लें।

भगवान शिव सत्तासी हजार साल की समाधि में विराजित है। दक्षकन्या सती जो कुछ उससे हो गया है उसका पश्चात्ताप कर रही है। शिव राम-राम बोलने लगे। विश्वनाथ जागे हैं। सती शिव के पास गई। शिव के चरणों में वंदन किया। दुःख आदमी को विनम्र बनाता है, विनयी बनाता है। हम चाहे ना दुःख, लेकिन आ जाये तो पोज़िटिव चिंतन करना कि यही दुःख मुझे विनम्र बनायेगा। हमारी

मानसिकता ने सदा-सर्वदा यही अस्तित्व के सामने प्रार्थना रखी है, 'सर्वे भवन्तु सुखिनः मा कश्चित् दुःखभाग् भवेत्।' ये हमारी मांग रही। फिर भी आ जाये तो दुःख को भी 'अतिथिदेवो भव' कहो। अल्लाह करे, किसी के जीवन में दुःख न हो। लेकिन आया तो फिर चलो, स्वागत। वही दुःख हमें विनम्र करेगा। सुख का स्वभाव है विभाजित करना। दुःख का स्वभाव है इकठ्ठा करना। परिवार में सुख बढ़ता है तो व्यवस्था के नाम से भी दो भाई सोचेंगे कि चलो बिलग हो जाये; तेरा मकान ये, मेरा मकान ये। माता-पिता यहां रहे। एक व्यवस्था के नाम पर भी हो सकता है। सुख का स्वभाव है बिलग करना। लेकिन जब परिवार में दुःख आता है तो विदेश में रहता भाई भी दौड़कर आ जाता है। दुःख इकठ्ठा कर देता है। सती विनम्र हो गई। इतने साल का वियोग उसको ढीला कर गया। विनम्रता आई। जाकर शिव को प्रणाम किया। भवानी को सन्मुख आसन दिया। जो सती शिव से विमुख हो चुकी थी; रामकथा से विमुख हो चुकी थी। आज करुणावतार शिव ने इस विमुख को सन्मुख कर दिया। और 'मानस' का सूत्र आप जानते हैं कि जीव जब सन्मुख हो जाता है तो कोटि-कोटि जन्मों के पाप जलकर भस्म हो जाते हैं। पाप जन्म-जन्म के हो तो भी डरना मत; करना भी मत। उपाय बहुत सरल है।

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम।।

भगवान कहते हैं, मेरा एक व्रत है, मेरा एक स्वभाव है कि कोई सन्मुख आकर एक बार प्रणाम करे कि हे नाथ, मैं तेरा हूं तो पूरे जगत में मैं उसको निर्भय कर देता हूं। ये मेरा व्रत है। यहां 'व्रत' शब्द अच्छा है लेकिन मैं उसका भाष्य करूंगा, ये मेरा स्वभाव है। 'मानस' उसका भाषांतर करते हुए अर्धाली में बोलता है 'सकृत प्रणाम किये अपनाये।' कोई एक बार प्रणाम कर दे तो ठाकुर उसको अपना लेते हैं। आदमी बहुत श्रम करते हैं तब पाप इकठ्ठा होता है और उसको जलाने में ज्यादा श्रम नहीं, एक बार 'हे हरि, हे हरि, हे हरि।' एक चिंगारी पर्याप्त है। इतना सरल उपाय फिर भी आदमी हरि की शरण क्यों नहीं जाता? आदमी क्यों हरि को नहीं पुकारता है? सन्मुख होना। हरि के सन्मुख होना। शिव के सन्मुख होना। मेरे श्रोता भाई-बहन, मैं तो आपको कहूं कथा सुनने के बाद ऐसे विवेकशील हम हो जाये कि परिवार में भी किसी के हम विमुख न रहें। साधक को चाहिए किसी से विमुख न हो, भजनानंदी को चाहिए किसी से विमुख न हो। परिवार परेशान करे तो भी। सत्संग करनेवाले साधकों को परिवार कितना भी विमुख हो जाये, सन्मुख ही रहना।

भवानी भगवान शंकर के चरणों में प्रणाम करती है। विमुख सती को भगवान ने करुणा करने सन्मुख स्थापित किया। मालिक ने करुणा कर दी और करुणा से कथा भी रसप्रद सुनाने लगे। सती के पिता को ब्रह्मा ने जब प्रजापति नायक दक्ष की पदवी दे दी तो दक्ष को अहंकार आ गया। फिर जिसको पद-प्रतिष्ठा मिल जाये तो कौन सन्मान नहीं करता? दक्ष महाराज का नागरिक अभिनन्दन का समारोह हुआ। मुझे लगता है किसी को पद मिलता है तो ये समारंभ योजने की व्यवस्था पहले से चली आ रही है! जिसको बड़ा पद मिले उसको सामने से कहना चाहिए कि हमारे अभिनन्दन समारोह में इतना खर्चा मत करो। इससे बिल्कुल दस भाग का खर्चा करो। नब्बे प्रतिशत खर्चा जो लगे उसका सौ गरीब लोगों को घर बना दो। जहां जाओ वहां सन्मान, सन्मान, सन्मान! ये क्या तमाशा है दुनिया का? सामान्य चुनाव में जीते तो ओहोहोहो! जहां जाएं वहां सन्मान समारोह! मुझे कोई आपत्ति नहीं है किसी के सन्मान में लेकिन लेकिन ये परम्परा पहले से चल रही है। फिर माला न पहनाई तो उसको बुरा लगता है कि इसने माला नहीं पहनाई! छोडूंगा नहीं ! जो सन्मान रागद्वेष की सृष्टि करे इससे बाज आओ।

दक्ष का नागरीय अभिनन्दन समारोह हुआ। ब्रह्मा, विष्णु, महेश सब। उसी समय दक्ष महाराज पधारे सभा में तो सब खड़े हो गए। अब महादेव तो निरंतर हरि के ध्यान में रहते हैं तो उसको पता नहीं कि कौन आया, कौन गया? दक्ष महाराज ने देखा कि मेरे सन्मान में सब खड़े हुए और मेरा दामाद खड़ा नहीं हुआ! बस मन में चोट लग गई कि मैं बदला लूंगा। तब से दक्ष के मन में बदला लेने की बात उठी कि मौका मिले तो मैं ऐसा यज्ञ करूं और यज्ञ में सब देवताओं को बुलाऊं और ये तीन को नहीं बुलाऊं। और यज्ञ में सभी देवताओं को निमंत्रित करते हैं लेकिन ब्रह्मा को, विष्णु को नहीं और शिव को तो खास नहीं। और सभी देवता दक्षयज्ञ में विमान ले लेकर के जाने लगे तब सब कैलास पर से उड़ान भरते हैं और कैलास पर शिव करुणा करके सन्मुख सती को रसप्रद कथा सुना रहे थे उसी समय देवलोग विमान से निकले। हिमालय को, कैलास को छोड़कर थोड़ा दूसरी जगह से जाते तो कथा में भी विक्षेप नहीं होता लेकिन देवता भी तो स्वार्थी हैं। जान बूजकर कैलास पर से ही निकले सब। मानो शंकर को दिखाने के लिए कि आपके ससुर के यहां यज्ञ है। हम सबको निमंत्रण

है, आपको नहीं है! ये मानव स्वभाव है। अपना निकट का रिश्तेदार उसके घर कोई प्रसंग हो और हमारे साथ बनती नहीं तो हमें आमंत्रण न दें लेकिन पड़ोसियों को खास दे कि आप जरूर आइयेगा सपरिवार और पडोशी जाए तो जाएं, लेकिन जान बूझकर हमारे घर आकर कहेंगे कि तुम्हारे वो संबंधी के घर प्रसंग है, आप नहीं जा रहे हैं? जलाने के लिए आते हैं।

देव स्वार्थी है। विमान ले लेकर निकले। सती एकदम विमान देखकर महादेव को प्रश्न करने लगी, भगवन्, ये सब देवता कहां जा रहे हैं? भगवान शिव ने कहा, देवी, आपके पिता एक यज्ञ कर रहे हैं और इस यज्ञ में सभी देवताओं को बुलाया लेकिन हमको नहीं बुलाया। क्योंकि मेरे से उसको मनदुःख हुआ है। सती ने जिद्द की, महाराज, आप न जाए तो ठीक है लेकिन मेरे पिता के घर प्रसंग है। मैं तो जाऊं? शिव ने बहुत यत्न तो किये कि देवी, जाने में फायदा नहीं है। नहीं मानी। तो कोई क्रोध नहीं आया शिव को और कहा कि ठीक है देवी, तो आप जाईए। ये शिव की कथा गृहस्थ को भी सीखने जैसी है कि पत्नी पिता के घर जाने की बात करे और आप समझाओ कि इस बार आप न जाओ तो अच्छा है। और वो जिद्द करे और न माने तो फिर आप भी जिद्द मत करना। सन्मान के साथ भेजना। ऐसे भेजना कि ठीक जाइये और वहां भी अच्छा अनुभव न हो तो मेरा दर खुला है खुला ही रहेगा। ये दरवाजा कायम खुला है। आप आ जाइयेगा।

शिव बहुत अद्भुत है। शिवचरित्र हम जैसे जीवों के लिए बहुत प्रेरणा है। मेरे महादेव बहुत वास्तवकि गृहस्थ दर्शन प्रदान करते हैं। विदा की। और पिता के घर जब सती गई तो दक्ष के भय के कारण किसी ने भी सती का सम्मान नहीं किया। दक्ष ने बेटी को कुशल भी नहीं पूछा और बेटी को देखकर दक्ष के शरीर में आग लगने लगी कि ये कहां आई! सब तरह से सब लोग विमुख है। तब जाके गोस्वामीजी मातृत्व का बचाव करते हैं। सती की माता जो थी वो दौड़कर आई और बेटी को गले लगाकर कहने लगी, बेटी, मन में बुरा मत लगाना। तेरे पिता की बुद्धि आजकल पद अहंकार में थोड़ी भ्रष्ट होने लगी है। उसके भय के कारण तेरा कोई सम्मान नहीं कर रहा। लेकिन बेटी, मैं तो माँ हूं ना, मैं तो तेरी हूं ना! थोड़ी राहत हुई कि माँ ने कम से कम उसको गले लगाया।

सती दक्ष के यज्ञ मंडप में गई है। पूरा मंडप भरा है। सभी देवताओं का स्थान, आसन। सब बैठे हैं। कहीं भी शंकर भगवान का स्थापन तक नहीं। इतना बड़ा अपमान महादेव का। सती को चोट लगी। शिव अपमान सहा नही गया। सभी सभासदों को, मुनियों को, देवगणों को, उग्र वाणी में सम्बोधन किया, हे मुनिगण, देवगण, कान खोलकर सुनो। इस यज्ञशाला में जिन्हों ने शिव की निंदा की, कही, और जिन्होंने सुनी सबको यथायोग्य दंड़ मिलेगा। हर वक्त संकेत करने की इच्छा होती है। निंदा करनेवाला भी दंड़ के योग्य है और सुननेवाला भी दंड़ के योग्य है। निंदा करनी तो नहीं चाहिए। जैसे व्यासपीठ की तीन बात सत्य, प्रेम, करुणा ये जो पोज़िटिव बातें है। ऐसे ये तीन नेगेटिव बात मैं कहता रहता हूं- ईर्ष्या, निंदा और द्वेष। इससे हम बचें। न किसी की ईर्ष्या करे, न किसी की निंदा, न किसी से द्वेष। बहुत नुकसान होता है ये तीन से। लेकिन मूढ़ता के कारण हम सब इससे मुक्त नहीं हो पाते हैं!

यज्ञमंडप में अग्नि में सती अपने शरीर को समाहित कर देती है। हाहाकार हो गया! दक्ष की दुर्गति हुई। दक्ष के अहंकार के कारण इतना बड़ा सत्कर्म विफल गया। सती यज्ञ में जाते समय परमात्मा से याचना करती है कि मुझे दूसरा जन्म नारी का ही मिले, कन्या का ही मिले और मैं जन्म-जन्म शिवचरण की आराधिका बनूं। दूसरे जन्म में पार्वती के रूप में, कन्याकुमारी के रूप में नगाधिराज हिमालय के घर बेटी के रूप में प्रगट हुई। उमा आई। हिमाचल समृद्ध होने लगा। और पार्वती फिर तप करने गई। आकाशवाणी हुई। आगे का दर्शन हम कल करेंगे।

पार्वती ने-कन्याकुमारी ने तीन काम किये हैं। पार्वती हिमालय के घर जन्म लेती है। बड़ी होती है। उत्सव होता है। नारद आदि संत आये। उसकी भविष्य की बातें कही। नामकरण किया। ये सब पार्वती को केन्द्र में रखकर जो कथा है वो पार्वती व्यक्ति है। ये सब कन्यारूप है। फिर यहां उसने जो तप किया वो पार्वती केवल कन्यारूप नहीं है, व्यक्तिरूप नहीं है, ये शक्तिरूप है। इतना कठिन तप, ये शक्तिरूपा पार्वती है। और तपस्या के बाद जब उसकी कसौटी की गई सप्तऋषियों के द्वारा, वो पार्वती शक्तिरूपा भी नहीं है, व्यक्तिरूपा भी नहीं है, वो पार्वती भक्तिरूपा है; शरणागत पार्वती है। तीन रूप में हैं ये।

कथा-दर्शन

- भगवत्कथा आत्मसम्मान की शिबिर नहीं है, आत्मभान की शिबिर है।
- शास्त्र सरलता से समझ में आता है, पांडित्य से नहीं।
- ईश्वर का अवतार होता है, सद्गुरु का कभी अवतार नहीं होता। क्योंकि सद्गुरु कायम वर्तमान है।
- सद्गुरु का कोई उत्तराधिकारी नहीं होता है।
- गुरु झांझर बने तब तक ठीक है, गुरु ज़ंजीर बने तब खतरा है।
- बुद्धपुरुष पल को कभी भूतकाल नहीं होने देता और पल को कभी भविष्य में नहीं रखता।
- बुद्धपुरुष वो है जिसको प्रेम किये बिना आप रह ही न सको।
- साधु जवाब नहीं देता, साधु जागृत करता है।
- सबको साधु बनाना नहीं चाहिए, सबको साधुसंगी बनाना चाहिए।
- छोटे-छोटे बच्चे को दीक्षित कर देना ये कभी-कभी हिंसा लगती है।
- साधक को चाहिए किसी से विमुख न हो; भजनानंदी को चाहिए किसी से विमुख न हो।
- सच्चा अनुराग विराग से ही पैदा होता है। जिसकी भूमिका विराग नहीं है, वो अनुराग नकली फूल है।
- त्यागमूर्ति ही तपमूर्ति बन सकता है। और तपमूर्ति फिर त्रिमूर्ति बन जाता है।
- करुणामूर्ति होने के लिए बहुत त्यागना पड़ता है।
- तप आदमी को कृश करता है। समाधि आदमी को पुष्ट करती है।
- जितना भजन बढ़ाओ, तुम्हारी परेशानी बढ़ेगी। लेकिन ईश्वर भजन के प्रताप से सहनशक्ति बहुत देता है।
- एक बार ज़हर पीने की आदत हो जाए तो ज़हर मार नहीं सकता।
- प्रभु के प्रसाद के रूप में जो आए उसको कुबूल करो लेकिन विवेक रखो।
- सत्य है अद्वैत। प्रेम है द्वैत। और करुणा है विशिष्टाद्वैत।
- जिस जीवन में प्रेम नहीं है वो जीवन रस्म और रिवाजों के कारण घसीटा जा रहा है।
- सुख का स्वभाव है विभाजित करना। दुःख का स्वभाव है इकट्ठा करना।

आत्मसभानता की-आत्मजागरण की शिबिर है रामकथा

आज की कथा के आरम्भ में पुनः माँ के चरणों में प्रणाम। आज हमारे राष्ट्र के लिए और समूचे युवा जगत के लिए परम सौभाग्य और गौरव का दिन है। ऐसे एक युवा संन्यासी स्वामीजी विवेकानंदजी की जन्म जंयती है। आज के इस पावन पर्व पर, इस पावन तपस्थली से स्वामीजी के चरणों में उसकी युवा चेतना को भी मेरा प्रणाम। संत प्रवर, कथा में उपस्थित विध-विध क्षेत्र के हमारे आदरणीय सभी और आप सभी मेरे भाई-बहन, सभी को मेरा प्रणाम। फिर एक बार विवेकानंदजी की युवा चेतना को प्रणाम करते हुए, हम सब भाग्यवान हैं कि आज के दिन हम यहां है। जब मैंने ये डेइट दी तब मुझे भी पता नहीं था कि बारह तारीख बीच में आ रही है। कुछ अस्तित्व ही निर्णय करता है कि कौन-सा जोग, लगन, ग्रह, वार, तिथि चुना जाये भगवतकथा के लिए। तो ये परम प्रसन्नता की बात है कि हम हमारे एक गौरवीय संन्यासी को आज याद कर रहे हैं, उसी की भूमि पर। आप सब को बधाई।

देवर्षि नारद हिमाचल को कहते हैं, आपकी ये कुमारी कन्या सभी लक्षणों में संपन्न है। और सबसे विशिष्ट लक्षण उसका ये है, वो अपने पति को निरंतर प्रिय बनी रहेगी। लेकिन उसी ऊंचाई को छूने के लिए आपकी कन्या जो तप करे तो महादेव शिव भावि को भी मिटा देंगें और तुम्हारी कन्या कृतकृत्य होगी। और माता-पिता बेटी को तप की सूचना देते हैं। बेटी स्वयं कहती है, मुझे सपना आया, ब्राह्मण ने बताया कि तू तप कर। तप की फलश्रुति भी मुझे बताई। और जाकर व्यक्ति के रूप में जो कन्या थी वो शक्ति के रूप में तपस्विनी बन गई यहां। उसका अंतिम रूप है जिसको मेरी व्यासपीठ भक्तिरूप कहती हैं, जिसमें पूरा का पूरा नितांत समर्पण है। बिलकुल परिशुद्ध शरणागति है।

भगवान याज्ञवल्क्य ने भरद्वाजजी से कहा कि मैंने उमा का चरित्र, जो सुन्दर चरित्र है गाकर सुनाया। अब आप शम्भु चरित्र सुनिए। जबसे सती का त्याग हुआ; सती जल गई शिव भी विशेष विरागी बन गए, धूमते रहे। और भगवान महादेव के नेम और प्रेम को और हृदय में अविचल अखंड भक्तिरेखा को देखकर भगवान सारंगपाणि शिव के सामने प्रगट होते हैं और भगवान शिव से आग्रह करते हैं, महादेव! आपने जिस सती का त्याग किया वो सती हिमाचलकन्या बनकर प्रकट हो चुकी। नारद से दीक्षा लेकर के उसने कठिन तपस्या की है। अब हे भोलेनाथ, मैं आपसे एक वचन मांग रहा हूं कि

आप शैलजा से, शैलपुत्री से ब्याह करें। और तब शिव कहते हैं, महाराज, ये उचित तो नहीं लग रहा है, फिर भी आपकी आज्ञा मेरे सिर पर धारण करता हूं। भगवान अंतर्हित हुए और शिवजी सप्तऋषि को कहते हैं कि महात्मागण, आप पार्वती के पास जाइए, जहां वो तप कर रही है। और उसकी प्रेम परीक्षा करो।

कल हम बात कर रहे थे, भवानी की तपस्या चार हजार एक सौ साल की, कुछ दिन बाकी और एक पैर खड़े रहे। और पहले दिन से ही मैं कह रहा हूं कि ऐक पैर से खड़े रहने का मतलब है पंचनिष्ठा में खड़े रहना। तो एक पैर पर खड़े रहकर तप करने का मतलब केवल एकाग्रता से तप करना। बड़ा मुश्किल है। और एक बात जहां से आज मुझे शरू करना है वो ये है, 'त्यागमूर्ति भवेत् तपोमूर्तिः।' त्यागमूर्ति जो होता है वो ही तपमूर्ति बन सकता है। बड़ा गहरा सूत्र है। बिना त्याग कोई तप कर ही नहीं सकता। भवानी का शरीर अत्यंत कोमल है। लेकिन पति को पाने के लिए उसने समस्त भोगों का त्याग कर दिया और ये भोगों का त्याग ही तप में परिवर्तित हुआ। तप की जननी है त्याग। संस्कृत सूत्रकार कहता है, त्यागमूर्ति ही तपमूर्ति बन सकता है। मेरा तुलसी पार्वती के इसी त्याग को उठाते हैं वहां कौन-सी पंक्ति है?

रिषिन्ह गौरि देखी तहं कैसी।
मूरतिमंत तपस्या जैसी।।

ये सुकुमार अवस्था का त्याग। सप्तऋषि आएं। इतने समय में ये त्यागमूर्ति तपमूर्ति हो गई। युवान भाई-बहन, याद रखना, त्याग है जनक तपस्या का। उपवास यदि तप है, इस उपवासरूपी तप का जनक है अन्नत्याग। इसके बिना तप संभव नहीं। योग यदि तप है तो इस तप का जनक है भोग का त्याग। हमारी कन्याकुमारी ने सब भोग छोड़ दिए। तब जाकर तपमूर्ति बन पाई। त्याग है जनक, त्याग है निर्माता तप का। और फिर मैं व्यासपीठ के सूत्र में आ जाउं तो सत्य है तप, प्रेम है तप, करूणा है तप। और जब सत्यरूपी तप करना है तो आप सोचिये, इससे पहले कितना त्याग करना पड़ता है! हरिश्चंद्र को पत्नी को बेचना पड़ा। हरिश्चंद्र को इकलौते बेटे को बाज़ार में बेचना पड़ा। सत्य बड़ा तप है बाप! उस दिन भी काव्यपाठ में या किसने कहा था कि सत्य बोलने को जी तो बहुत कर रहा है कि सत्य बोलूं, सत्य बोलूं लेकिन हौसला नहीं है। और दीप्ति मिश्र का क्या शे'र था वो कि-

सच को मैंने सच कहा, जब कह दिया तो कह दिया।
अब ज़माने की नज़र में ये हिमाक़त है तो है।
वो नहीं मेरा मगर उससे मुहब्बत है तो है।
ये अगर रस्मों रिवाजों से बगावत है तो है।

तो बाप! सत्य यदि तप है; और है। सत्य से बड़ा बढ़िया कौन तप है? लेकिन सत्यरूपी तपमूर्ति कोई बने इससे पहले कितना त्याग करना पड़ता है!

मज़ा देखा मियां सच बोलने का,
जिधर तू है उधर कोई नहीं है।
- नवाज़ देवबन्दी

सत्य के लिए, सत्यमूर्ति बनने के लिए पहले साधक को कितना त्याग करना पड़ता है! और मैं आपसे बातें करूं प्रेम से बड़ा तप कौन है? और आप प्रेम करो तो आपको कितना त्यागना पड़ता है? प्रेम है तप-तपस्या। गोपियों की तपस्या की उसके त्याग की कोई कल्पना तो करे! राधा के प्रेम के पीछे जो त्याग है उसकी कोई कल्पना करे!

तीसरी बात है करुणा। करुणा तप है। करुणा करने के लिए बहुत त्याग पड़ता है। आप लाख करुणा करो और सामनेवाला तुम्हें न समझ सके तो फिर आपको कितना त्याग करना पड़ता है! कितना मन को समझाना पड़ता है! करुणामूर्ति होने के लिए बहुत त्यागना पड़ता है। बुद्ध के बारे में ये शब्द बहुत प्रचलित है, 'करुणामूर्ति'बुद्ध। और बुद्ध करुणामूर्ति का पद पाते हैं इससे पहले उसको त्यागमूर्ति में अपने को ढ़लना पड़ा।

तो त्यागमूर्ति ही तपमूर्ति बन सकता है। और तपमूर्ति फिर त्रिमूर्ति बन जाता है। 'तप बल रचई प्रपंचु बिधाता!' ये त्रिमूर्ति है। रेंज देखिये आप! 'तप बल रचई प्रपंचु विधाता' एक मूर्ति। 'तप बल विष्णु सकलजग त्राता' दूसरी मूर्ति। 'तप बल संभु करहिं संहारा' तीसरी मूर्ति। त्रिमूर्ति जो है। तपमूर्ति फिर अंततोगत्वा त्रिमूर्ति में परिवर्तित होती है। 'मानस' अद्भुत शास्त्र है! कल परवाज़ साहब अपनी गज़लों के कुछ शे'र के साथ-साथ 'मानस' की चौपाईयां डालते थे तब मेरे वक्तव्य को बल मिलता था कि 'रामचरितमानस' एक बहुत चिरंजीवी गज़ल है। तो मूल में त्याग होता है, ध्यान दें। बिना त्याग तप निर्मित नहीं होता है। इसलिए फिर वही शब्द दोहराऊं, तप का निर्माता है त्याग।

मेरे युवान भाई-बहनों, आज विवेकानंदजी का दिन है। मेरे युवान भाई-बहनों को मैं कहना चाहूंगा कि निषिद्ध कर्म का त्याग तो करना ही चाहिए। जो करने योग्य नहीं है वो नहीं करो। लेकिन जो नियत कर्म है उसको निरंतर करते रहना। निषिद्ध कर्म नहीं, नियत कर्म करना ही चाहिए। निषिद्ध कर्म का त्याग होना ही चाहिए, जो करने योग्य नहीं है। लेकिन नियत कर्म का त्याग न करो। और नियत कर्म का भी मोह के कारण जो त्याग कर देता है, उसको 'गीता'कार कहते हैं, वो तामस त्याग है। नियत कर्म का त्याग न करो कभी। कुछ हमारे और आपके सबके नियत कर्म है। मेरा नियत कर्म है कथा कहूं, गाऊं। मेरा नियत कर्म है यज्ञ करूं। मेरा नियत कर्म है मैं आख़िरी व्यक्ति तक पहुंचूं। मेरा नियत कर्म है मैं सबका स्वीकार करूं। मेरा नियत कर्म है मैं सबको मोहब्बत करूं। ये मेरा नियत कर्म है। और मेरे गुरु की कृपा से और आप सबके सहकार से मैं नियत कर्म किये जा रहा हूं। कभी-कभी तो ऐसा साहसी कदम उठ जाता है, बाद में मुझे पता लगता है कि ये तलगाजरडा का नियत कर्म था। जो करना चाहिए था, हुआ। मेरी व्यासपीठ किन्नरों तक गई और ये व्यासपीठ अब बिलकुल ऊर्जा लेकर के गणिकाओं तक जाने के लिए तैयार हो चुकी है। ये मेरा नियत कर्म है। और मैं 'मानस-गणिका' करने जा रहा हूं २०१८ में। मैं समझता हूं, बहुत क्रिटिक लोग जो होंगे। लेकिन सीपियां कौन ले गया, समंदर नहीं देखता। परवाजसाहब वो कौन-सा शेर था, आप बता दीजिये ना। ये तो बड़ा मुशायरा है साहब!

घर से निकले हैं तो फिर घर नहीं देखा करते।
चलनेवाले कभी मुड़कर नहीं देखा करते।
सीपियां कौन किनारे से उठाकर भागा,
ऐसी बातों को समंदर नहीं देखा करते।

तलगाजरडा के कुछ नियत कर्म है। मैं आप सबको अपना समझकर बोले जा रहा हूं। जो अर्थ लगाना है लगाओं। कई लोगों ने तो जब मैंने जायरात की तब से विरोध शरू कर दिया कि 'रामचरित मानस' में कहीं गणिका लिखा ही नहीं है और मोरारिबापू लोगों को उकसा रहे हैं! अब मैं उसको क्या कहूं कि यार! यार तो नहीं कह सकता, बड़ें है, बुज़ुर्ग हैं, और एक विशेष स्थान के लोग हैं। उसको मैं कैसे कहूं कि 'मानस' में 'गणिका' शब्द आया है। मैं कैसे समझाऊं?

पाई न केहिं गति पतित पावन राम भजि सुनु सठ मना।
गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे धना।।

तिरस्कृत, उपेक्षित, अंतिम, अधम से अधम का जो लिस्ट तुलसी अपने पवित्र सद्ग्रंथ के समापन में देते हैं उसमें सबसे पहले गणिका को याद करते हैं। तुलसी की यदि ये नियति है; शंकर के शास्त्र की ये नियति है तो मेरी भी ये नियति है। गनिका, गनिका, गनिका। त्रिसत्यम्, त्रिसत्यम्, त्रिसत्यम्। 'मानस' की चौपाई में 'गनिका' शब्द है।

एक थोड़ी भूल हूई, हुई। हुई न हुई अल्लाह जाने लेकिन अहिल्या तिरस्कृत हुई तो पुर के राम को, अयोध्या के राम को चलकर अहिल्या के पास जाकर उसका स्वीकार और उद्धार करना पड़ा। तो एक वासंती नामक गणिका आश्रम में न थी। लेकिन यहां तो राम चलकर गए। वो बेचारी चलकर अयोध्या गई थी। तो अयोध्या वासंती गणिका के रूप में जा सकती है तो वहां रामकथा का जाना नियति है। और साहब! यहां कौन गणिका नहीं है? स्त्री और पुरुष के लिंग और जाति में मत देखिये। जो इमान बेचता है ऐसा वैश्य गणिका है। जो वेद बेचता है वो ब्राह्मण गणिका है। जो कठिन से कठिन सेवाधर्म है वो सेवाधर्म छोड़ देता है वो सेवक गणिका है। और प्रपंच और दम्भ करता है वो साधु गणिका है। खाली देह बेचती है वो ही गणिका नहीं। कोई भी गणिका ने देह शायद बेचा होगा, दिल कभी नहीं बेचा। एक नर्तकी की सभा में मेरा विवेकानंद भी बैठा था युवा संन्यासी और एक नर्तकी नृत्य करती थी। कौन गणिका नहीं है? मैं व्यासपीठ पर बेठकर मेरी वाणी का पैसा लूं तो मैं भी गणिका हूं। पुरुष और स्त्री का भेद नहीं है। सवाल वृत्ति का है, व्यक्ति का नहीं है।

कौन नहीं है गणिका? जो शस्त्र का समर्पण करने के बदले शस्त्र बेचता है वो क्षत्रिय गणिका है। शस्त्र के सौदागर दूसरे होते हैं। दोष दूर मुल्कों में होते हैं। सच्चा क्षत्रिय शस्त्र देते हैं। वो गृहस्थ गणिका है जो घर में जैसी भी रोटी हो और अतिथि आये और उसको कहे कि मेरे घर में रोटी नहीं है और दरवाजे बंद कर दे। 'सोचिअ जति प्रपंच रत।' वो संन्यासी गणिका वृत्ति का है जो प्रपंच में डूबा है और विवेक और वैराग से मुक्त है। संन्यासी को भी त्याग करना चाहिए। ऐसा ब्रह्मचारी गणिका वृत्ति का है जो अपने संयम को बेच देता है, त्याग देता है। संयम से भ्रष्ट हो जाता है। और आखिरी गणिका वृत्ति, 'सोचनीय सबहीं बिधि सोई। जो न छाड़ि छलु हरिजन होई।।'

अपनी मज़बूरी, समाज की उपेक्षा, परिवारों से हुआ त्याग, कुछ प्रलोभन इन सभी के कारण आई थोड़ी स्वच्छंदता इनके कारण कोई बाज़ार में अपने आपको रखकर के नर्तन करके दुनिया को रिझाते हैं तो उसने देह विक्रय किया मानो, चलो, लेकिन दिल विक्रय नहीं किया है। ऐसी गणिकाओं के लिए कथा गाना मेरी नियति है। मेरे साथ चले वो महायात्रा के यात्री होंगे। और क्रिटिक भलें सीपियां गिनते रहें! वेईट करो, २०१८। शिवबाबू, स्थान भी मैने निश्चित कर लिया है। जहां वासंती गई थी वहां मेरी रामकथा जाएगी और वो स्थान है अयोध्या।

विवेकानंदजी के कुछ विचार हैं ना। माफ़ करियेगा, इन विचारों से, कुछ विचारों से मैं सहमत भी नहीं हो पाता हूं। यस, बिलकुल। मैं स्वामीजी के प्रति बिलकुल नतमस्तक हूं। कुछ बातें उसने जो राष्ट्र को ऊंचाई पर उठाने के लिए जागृत करने के लिए जो कही है वो शत प्रतिशत क्या, एक हजार आठ प्रतिशत देश-काल के अनुकूल है। लेकिन कुछ बात जो है ये व्यक्तिगत रूप में शायद मेरी निजता मुझे मना भी करे। आपने कभी कहा, यदि शास्त्र के रूप में कहा; मनु को क्वोट करके कहा अपने प्रवचनों में। और कृष्ण भी वो ही बोले 'गीता' में कि आततायी को मार डालो। एक थप्पड़ कोई मारे तो उसको दस थप्पड़ मारो। मुझे कोई कहे कि आततायी को मारो, तो मोरारिबापू बोलता है मारो लेकिन मुझे आततायी दिखे तो ना? मुझे दिखता नहीं, मैं क्या करूं? मुझे कोई आततायी व्यक्तिगत रूप में दिखता ही नहीं। राष्ट्र के आततायी को मारना ही चाहिए। सर्जिकल स्ट्राइक का मैं समर्थक हूं। मैंने आदरणीय प्रधानमंत्रीजी को सबसे पहले धन्यवाद दूरभाष पर दिया था। क्योंकि पूरे समाज और राष्ट्र का काम है। व्यक्तिगत रूप में मुझे कोई कहे, मुझे दिखता ही नहीं। मेरी कुछ अपनी मजबूरियां है। मुझे कोई आततायी दिखता ही नहीं! मुझे सब अपने दिखतें हैं।

किसको पत्थर फेंकू, केसर कौन पराया है,
शीशमहल में हर एक चेहरा मुझ सा लगता है।

मेरे पास विवेकानंदजी की तेज आंखें नहीं हैं। लेकिन आंसूवाली आंख जरूर है। मैं ये नहीं कर सकता, व्यक्तिगत रूप में मैं नहीं कर सकता। मैंने बोर्डर पर भी मेरे जवानों को बीच में कहा, भैया, यदि कोई संविधान और आर्मी के नियम में फ़र्क ना पड़ता हो, अल्लाह करे कोई बोर्डर पर किसी से किसी का युद्ध ना हो। लेकिन कभी मेरे राष्ट्र की शान खतरे में हो, मेरे देश के युवक जब आप बलिदान देते हैं ऐसे समय में यदि आप मुझे बुलाओगे तो मैं कथा छोड़कर आपके पास बैठूं। और मैंने कहा है, ये अपेक्षा मत रखना कि मैं आपके पास आऊं तब मैं यहां भाला लेकर आपके साथ खड़ा हो। मैं भाला नहीं ले पाऊंगा, मैं माला लेकर खड़ा रहूंगा। आप सरहद पर भाला लेकर जाओ, मैं तुम्हारे शिबिर में तुम्हारे लिए और मेरे राष्ट्र के लिए मेरे हिंदुत्व और मेरे हिन्द गौरव के लिए, मेरी सनातन धर्म परम्परा के लिए और पूरी विश्वशांति के लिए माला लेकर आउंगा। और याद रखना, पदार्थ से प्रार्थना की ताकत ज्यादा है। मैं ये कर सकता हूं। कभी मनु भगवान का सन्दर्भ लेकर कहा गया कि ब्राह्मण हो, बच्चा हो, वृद्ध हो, लेकिन आततायी हो तो उसको मारो। मैं सहमत नहीं हो सकता। एक बच्चा आततायी हो तो मुझे आततायी नहीं दिखता, मुझे बालकृष्ण दिखता है। घृणा इतनी ताकतवाली है तो मोहब्बत की कोई ताकत नहीं? उसको गोद में उठाओ; उसको प्यार करो।

भगवत्कथा आत्मसम्मान की शिबिर नहीं है, आत्मभान की शिबिर है। मैं युवा संन्यासी जिसका हम सबको गौरव है, विवेकानंदजी के शब्द का प्रयोग करूं। भारतीय युवानो में आत्मश्रद्धा प्रकट होनी चाहिए। आत्मश्रद्धा। विवेकानंदजी कहते हैं, एक अंग्रेज क्लर्क देश में आया। क्लर्क की नौकरी करता था बेचारा। दो बार तो उसने आत्महत्या करने के लिए अपने हाथ में रिवोल्वर लेकर अपने सिर पर फोड़ी। फिर भी आखिर बच गया। विवेकानंदजी कहते हैं, लेकिन सोचा दो बार मैंने रिवोल्वर से आत्महत्या करने का सोचा फिर भी मैं बच गया। इसका मतलब है कि मेरी आत्मा मुझे पुकारती है कि तेरा कुछ काम है, आत्मश्रद्धा बढ़ा। और ये आत्मश्रद्धा उसने बढ़ाई तो विवेकानंदजी कहते हैं वो लोर्ड क्लाइव बना। जो दो बार आत्मघात का प्रयोग कर चुका था और विवेकानंदजी कहते हैं, वो लोर्ड क्लाइव के रूप में इस देश में बहुत सफल हुआ। आत्मश्रद्धा जगाओ। आत्मसम्मान की भीख न मांगी जाये। क्षमता अर्जित की जाये। आत्मसभानता की शिबिर है रामकथा। आत्मजागरण की शिबिर है रामकथा। नौ दिन को दोपहरी में जागरण है रामकथा। हर नौ दिन रामकथा के नवरात्र है, ये रामकथा। आत्मगौरव ये संन्यासी जो जानता था हमारे पास। हिंदुत्व की जो व्याख्या की इस

महापुरुष ने, युवानों को एक बार पढ़ लेनी चाहिए। किसको मैं हिन्दु कहूं? किसको मैं हिन्दु कहूं? किसको मैं हिन्दु कहूं? जो उसने सूत्र पर सूत्र प्रदान किये हैं। मेरे युवक लोग इसको पढ़े कम से कम।

मोह और मूढ़ता के वश जो नियत कर्म छोड़ दे वो तामस त्याग है। उसके बाद राजस त्याग की बात। क्योंकि त्यागमूर्ति ही तपमूर्ति हो सकता है। मूल सूत्र याद रखना।

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत्।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत्।।

प्रत्येक कर्म दुःखरूप है। प्रत्येक कर्म में श्रम है। प्रत्येक कर्म दुःखरूप है। ऐसा सोचकर और प्रत्येक कर्म में काया को कलेश होता है। ये काया कलेश भय से जो कर्म को फेंक देता है वो त्याग राजसी त्याग है। कर्म में कलेश तो होगा काया को। आखिर में दुःख ही है, ऐसा करके जो कर्मयज्ञ छोड़ देता है। तो ऐसा त्याग भगवान कृष्ण कहते हैं, राजसी त्याग है, दुःखरूप कर्म है। कर्म न छोड़े। लेकिन आसक्तिमुक्त होकर और फल त्याग करके जो अपने निरंतर नियत कर्म करता है वो त्याग सात्त्विक है।

कार्यमित्यव यत्कर्म यितं क्रियतेडर्जुन।
सड्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्विको मतः।।

संग माने आसक्ति छोड़कर और फल की आशा को छोड़कर जो नियत कर्म करता है वो त्याग सात्त्विक त्याग है।

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते।
त्यागी सत्तवसमाविष्टो मेगावी छिन्नसंशयः।।

आहाहाहा! 'गीता' गाने का आनंद आता है साहब! मेरे दादाजी की वाणी में 'रामायण' थी, आचरण में 'गीता' थी। ये मूर्तिमंत 'गीता' मैं देखता था। ये आदमी के मुख में 'रामायण' थी, आचरण में 'भगवद्गीता' थी। यहां लिखा है त्याग की प्रक्रिया बताते हुए कि कोई अकुशल कर्म करे, करने योग्य कर्म नहीं है फिर भी कोई कर्म करता है ऐसा तो भी मेधावी साधक उसके प्रति द्वेष नहीं करता है। मेरे पास मेरी व्यासपीठ कई भाई-बहन आते हैं जो बार-बार झूठ भी बोलते होंगे! छलते भी होंगे! सभी एक नौका के यात्री है साहब! किसी की बात जानकारी में है, किसी की बात अनजानी है। फ़र्क क्या पड़ता है? सब अपनी आत्मा को पूछो। विनोबाजी ने कभी जेल में प्रवचन देते हुए कहा था, हम सब गुनहगार है। तुम पकड़े गये हो, हम पकड़े नहीं गये हैं, इतना ही फ़र्क है। कई लोग होते हैं, बार-बार झूठ बोलते होंगे; गलत माहिती देते होंगे। बार-बार तर्क करते होंगे। कोई भी बात मानने को तैयार नहीं होते। क्या हम उससे द्वेष करें? नको। और तुम बहुत अच्छा करो तो मैं तुम्हारे पीछे नाचूं? कुशल कर्म के प्रति साधु को आसक्ति ना हो, राग न हो और अकुशल कर्म के प्रति साधु को द्वेष न हो।

महादेव के भेजे सप्तऋषि कन्याकुमारी जहां तप कर रही थी। फलश्रुति ओलरेडी ब्रह्मवाणी ने दे दी थी और सप्तऋषि वहां आये तो क्या देखा सप्तऋषि ने? पार्वती तप नहीं कर रही थी। स्वयं तप बैठा था। स्वयं तपस्या प्रतिष्ठित हो गई थी। मुनि सम्बोधन करते हैं। हे शैलकुमारी, रोक पर बैठी, चट्टान घर बैठी, स्थिरता पर बैठी इसलिए नाम सम्बोधन शैलकुमारी। तीन प्रश्न पूछे ऋषि ने। पहला प्रश्न-

बोले मुनि सुनु सैलकुमारी।
करहु कवन कारन तपु मारी।।

ये भूमिका है। पहला प्रश्न है, इतना कठिन तप तू क्यों करती है? इतनी सुकुमार अवस्था में इतना कठिन तप क्यों करती हैं? दूसरा प्रश्न, तू किसकी आराधना करती है? तेरे आराध्य कौन है? तेरा साध्य क्या है? तीसरा प्रश्न, तू क्या चाहती है? हमारे सामने ये सब का मर्म खोलकर उत्तर दे दो। तीन प्रश्न। कठिन तप क्यों कर रही हो? कर रही है तो किसकी आराधना कर रही है? किसी की भी आराधना कर रही है तो क्या तेरा लक्ष्य है? और फिर कन्याकुमारी इनका उत्तर देने के लिए आगे बढ़ती है। उसकी चर्चा हम कल करेंगे।

आज विवेकानंद जयंती के दिन मुझे रामजयंती मनवानी है। मुझे भगवान राम का जन्म भी करा देना है। क्योंकि आज योग कि मेरे देश का एक परम सौभाग्य परम गौरव स्वामीजी की जन्म जयंती और वो भी हम यहां आये, इस भूमि पर जहां इस महापुरुष ने तीन दिन तीन रात ध्यान करते अपने भविष्य का लक्ष्य निर्धारित किया था। ये शिला जो मौजूद है उसकी स्मृति से लबालब भरी। तो इसी विवेकानंदजी की जयंती के अवसर पर विवेकानंदजी को हम क्या गिफ्ट दें? भेंट क्या दें? हम क्या दें उसको? तो मैं रामजन्म की भेंट उसको करूंगा कि ले बाबा, ये हमारी भेंट है।

तो बाप! रामजन्म की कथा संक्षेप में मैं आपके सामने गा दूं। अब कन्याकुमारी जो केन्द्रस्थ विषय है उसकी विशेष चर्चा जो गुरुकृपा से और जो प्रवाह चले उसके रूप में हम कल करेंगे। सप्तऋषि परीक्षा करके जाते हैं। शिव को कह देते हैं कि भवानी को आप पर बहुत प्यार है और सुनकर के भगवान शंकर ध्यान में डूब जाते हैं। और संसार में तारकासुर नामक एक राक्षस पूरे जगत तो त्रास देने लगा। सभी देवता के भोग खतरे में। सभी देवताओं ने भय के कारण ब्रह्मा से शिकायत की कि ये तारकासुर मरे तो हम चैन से जी पाएं। ब्रह्मा ने कहा, तारकासुर को मारने का तो एक ही उपाय है कि शिव की शादी हो; शिव के घर पुत्र जन्म हो और शिव का पुत्र ही तारकासुर को मार सकता है। स्वार्थी देवता लोग शिव के पास पहुंच गए। सब भगवान की प्रशंसा करने लगे। भगवान शिव ने कहा, प्रशंसा रहने दो, इरादा क्या है बताओ? बुद्धिमान ब्रह्माजी, वयोवृद्ध ब्रह्माजी देवगणों की अगवानी करते हुए बोले, महाराज, ये देवगण मेरे पीछे पड़े हैं। देवकुल में किसी का ब्याह नहीं होता है। तो हमने कहा, चलो भगवान शिव को प्रार्थना करें। वो ब्याहें तो हम बाराती बनें और कुछ रस लें। शिवजी तो समझ गए कि आप लोग बड़े चतुर हैं। लेकिन आप कहे और मैं ब्याहने के लिए तैयार हो जाऊं ऐसा न समझो, मन में कहा। मेरे ठाकुर ने, मेरे हरि ने मुझे कहा कि शैलजा से आप ब्याह करो, पर्वत की पुत्री से। तो भगवान के वचन को मैंने हृदय में रखे हैं तो मैं जरूर शादी करूंगा।

गणों ने कहा कि मुकुट चाहिए दुल्हे के सिर पर; मुकुट मोर चाहिए, गहने चाहिए, वाहन चाहिए, सवार चाहिए और आपने सीधी हां बोल दी! ठीक से मुकुट मोर पर सर्प को बिठा दिया और भुजंगराज बैठ गए मुकुट मोर की तरह बाबा के मस्तक पर। दो-तीन सांप को बिठा दिए गले में माला की तरह। हाथ में कंगन, कटिकंध मेखला, सब जगह बिछू, सांप! बाबा का सिंगार हुआ! ताजी भस्म जो थी चिता की उस भस्म का लेपन हुआ। हाथ में तलवार की जगह त्रिशूल पकड़वाया। वाहन में नंदी बाबा तैयार हुए। कटि भाग पर मृगचर्म लपेटा। यज्ञोपवित भी सर्पों की लपेटी पहनी हुई है। ऐसा विचित्र दुल्हा का रूप लेकर बाबा नंदी पर सवार हुए। उसके भूत-प्रेत गण जयजयकार करने लगे। हिमाचल प्रदेश बारात आई। पूछते-पूछते महादेव महाराज हिमालय के द्वार पर पहुंचे हैं। महारानी मैना उमा की माता सखियों के संग शिव के स्वागत के लिए आती है। और आरती उतार ने गई ही और दुल्हे का ये विकट रूप देख मैना के हाथ से आरती की थाली गिर पड़ी! महारानी मैना को लेकर सखियां निज मंदिर में गई। इतने में देवर्षि नारद, सप्तऋषि, हिमालय स्वयं आये निज मंदिर में। नारद ने आकर मैना को कहा, सुनो मैना, भ्रांति छोड़ो। ये उमा आपकी बेटी नहीं है। तुम उसकी बेटी हो। ये जगदम्बा, परम्बा आदि शक्ति है। सद्गुरु के रूप में जब नारद ने ये भ्रान्ति का पर्दा हटाया तब सबको पता लगा कि शिवतत्त्व क्या है? शक्तितत्त्व क्या है? सब पार्वती के चरणों में वंदन करने लगे। और फिर शिव और पार्वती का वेद और लोकविधि से विवाह सम्पन्न हुआ। कन्या की विदाई हुई। पर्वत की पार्वती पतिगृह गई। काल बिता। नित नूतन विहार और इस विहार के फलस्वरूप समय मर्यादा पूरी होते ही पार्वती ने पुत्र को जन्म दिया। कार्तिकेय का जन्म हुआ। तारकासुर को कार्तिकेय ने निर्वाण दिया और जगत की पीड़ा का नाश किया।

एक बार शिव कैलास के वेदविदित वट वृक्ष की छाया में सहज आसन मैं बैठे हैं। पार्वती शुभ अवसर देखकर शरण में आई है। पार्वती पूछती है कि महाराज, मेरे मन से अभी ये भ्रम नहीं गया कि राम ब्रह्म है कि सामान्य मनुष्य है? रामकथा के माध्यम से मेरे इस संदेह को मिटाओ। शिव को प्रसन्नता हुई। मंगल भवन अमंगलहारी का स्मरण करते हुए शिव जब कथा कहने के लिए पहला वाक्य कैलास से बोले तो ये बोले-

धन्य धन्य गिरिराजकुमारी।
तुम्ह समान नहिं कोउ उपकारी।।

भगवत्कथा आत्मसम्मान की शिबिर नहीं है, आत्मभान की शिबिर है। आत्मश्रद्धा जगाओ। आत्मसम्मान की भीख न मांगी जाये। क्षमता अर्जित की जाये। आत्मसभानता की शिबिर है रामकथा। आत्मजागरण की शिबिर है रामकथा। नौ दिन की दोपहरी में जागरण है रामकथा। हर नौ दिन रामकथा के नवरात्र है ये रामकथा।

हे गिरिराज कुमारी, आपको धन्य हो, धन्य हो। आपने ऐसी कथा पूछी जो सकल लोक को पवित्र करनेवाली गंगा है। आप बहुत उपकारक है। देवी, ब्रह्मतत्त्व निराकार से नराकार क्यों हुआ उसके कई कारण है। 'मानस' में पांच कारण बताये। पहला कारण जय-विजय। दूसरा कारण सती वृंदा का श्राप। तीसरा कारण नारदश्राप। चौथा कारण मनु-शतरूपा। पांचवां और अंतिम कारण राजा प्रतापभानु रावण बना श्राप के कारण, अरिमर्दन कुम्भकरण और धरमरुचि नाम का प्रधानमंत्री दूसरे जन्म में विभीषण बना।

'मानस' में राम जन्म के पहले रावण के जन्म की कथा अंकित हुई। सूर्य निकलता है इससे पहले रात्रि होती है इसलिए निशिचर वंश की कथा पहले, फिर सूर्यवंश की कथा कहते हैं। रावण, कुम्भकरण, विभीषण ने कड़ी तपस्या की। बड़े दुर्गम और दुर्लभ वरदान प्राप्त किये। रावण अपने प्राप्य वरदानों का दुरुपयोग करने लगा। धरती अकुला उठी। गाय का रूप लेकर धरती देवताओं के पास, ऋषि-मुनियों के पास गई। सब ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा ने समझाया कि अब तो एक ही उपाय है। पृथ्वी, आपको, देवताओं को, ऋषि-मुनियों को, जड़-चेतन को सबको और हमें भी जिसने बनाया है उसी की शरण में हम जाए। उसको पुकारें। सभी ने एक आवाज में पुकारा हरि को। आकाशवाणी हुई, धैर्य धारण करो। मैं अवधपुर में अवतार लूंगा। सब देवता राजी हो गए।

भगवान के आने की भूमिका बन गई और तुलसीजी हमको लिए चलते हैं श्रीधाम अयोध्या, जहां परमात्मा का प्रागट्य होने वाला है। रघुवंश का राज्य; सार्वभौम राज्य; वर्तमान राजाधिराज अवधपति जो धर्मधुरंधर है, गुणनिधि है, ज्ञानी है, वेदस्वरूप है। महाराज दशरथजी का दिव्य दाम्पत्य। प्रिय रानियां। राजा अपनी रानियों से प्यार करता है और रानियां राजा को बहुत आदर देती है। एक खुश्बू से भरा दाम्पत्य था लेकिन एक पीड़ा थी कि पुत्र नहीं है। और ये राजा अपनी पीड़ा किसको कहे? तो तुलसी ने एक बहुत शाश्वत समाधान प्रस्तुत करते हुए कहा, जब कहीं से भी अपनी पीड़ा का जवाब न मिले तो आदमी को चाहिए अपने सद्गुरु के द्वार जाये। 'गुर गृह गयउ तरत महिपाला।' शृंगी ऋषि को बुलाया है। पुत्रकामेष्टि यज्ञ हुआ। स्नेहयुक्त आहुतियां डाली गई। आखिरी आहुति के फलस्वरूप यज्ञपुरुष अग्नि के कुंड से बाहर आये। हाथ में प्रसाद की खीर से चरु भरा है। वसिष्ठ को दिया, महाराज, राजा को दो। अपनी रानियों को बांट दें। पुत्रों की प्राप्ति होगी। वशिष्ठजी राजा को देते हैं। अपनी रानियों को बांट दो।' और तीनों रानियों को आधा कौशल्या, आधी खीर कैकई, आधी से आधी फिर आधी पा भाग से दो भाग करके कौशल्या-कैकई के हाथों से सुमित्रा को प्रसन्नचित्त से दिलवाया।

हरि को आने की बेला हुई और पूरा अस्तित्व का वातावरण बदलने लगा। पंचांग अनुकूल हो गया है। त्रेतायुग, चैत्र मास, नौमी तिथि, भोमवासर है। शुक्ल पक्ष है। मध्य दिवस है। पाताल के नागदेवता, पृथ्वी के ब्राह्मण देवता और स्वर्ग के ये सूर्यदेवता भगवान की गर्भ स्तुति करने लगे हैं। पूरे जगत में जिसका वास है; पूरा जगत जिसमें वास करता है वो परब्रह्म परमात्मा, ये भगवान, ये ईश्वर, ये परमात्मा, ये प्रभु, जो कहना चाहो वो प्रगट हुए। कौशल्या के भवन में प्रकाश होने लगा। माँ आश्चर्यचकित रह गई और देखते ही देखते इस प्रकाश में एक विग्रह प्रकट हुआ चतुर्भुज रूप में। और माँ ने ये दर्शन किया और गोस्वामीजी की लेखनी गा उठी-

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी।।

चतुर्भुज विग्रह दर्शन किया। माँ असमर्थ हो गई। हे हरि! किन शब्दों में तेरी स्तुति करूं? बालक के रुदन की आवाज़ सुनते ही ओर रानियां सम्भ्रम दौड़ आई! दास-दासियां दौड़ आये! दशरथजी के पास जाकर किसीने बधाई दी, महीपति, बधाई हो। आपके घर पुत्र का जन्म हुआ। पहली प्रतिक्रिया राजा को ब्रह्मानंद का अनुभव हुआ। जिस का नाम सुनने से शुभ हो जाये वो मेरे घर आ गया! तो ये ब्रह्म हे कि भ्रम है, निराकरण कौन करेगा? जल्दी गुरु वशिष्ठजी को बुलाइये। वशिष्ठ ब्राह्मण देवताओं के साथ आये और कौशल्या के अंक में खेलते हुए बालक को देखकर ही संकेत हो गया। और महाराज दशरथजी परम आनंद में डूब गए। पूरी अयोध्या में रामजन्म की बधाइयां शुरू है। आज भारत के एक छोर पर बैठकर विवेकानंद शिला के सामने, माँ कन्याकुमारी के सामने, संत प्रवर के सामने आपकी उपस्थिति के साथ विवेकानंद की जन्म जयंती पर रामजन्म की आप सभी को बधाई हो, बधाई हो, बधाई हो।

कन्या है सत्य, पत्नी है प्रेम और माँ है करुणा

'मानस-कन्याकुमारी' उसकी कुछ संवादी चर्चा चल रही है। पार्वती के प्रेम की परीक्षा के लिए सप्तऋषि आये हैं और पार्वती को जब देखा तो लगा कि मानो स्वयं तपस्या बैठी है। और फिर सप्तऋषि प्रश्न पूछते हैं, आप इतनी कठिन तपस्या क्यों करती है? क्या कारण है? और तप कर ही रही हैं तो तपस्या में तू किसकी आराधना कर रही है? और आराधना के फलस्वरूप तुम्हारी चाह क्या है? हे कन्या, इसके मर्म साफ़-साफ़ बताओ। एक तो सप्तऋषि ने पहला प्रश्न ये पूछा कि आप तप क्यों करती हैं? ये तो दिखा कि ये तपस्या ही है। लेकिन दूसरा और तीसरा प्रश्न ओर गहरा है कि आप किसकी आराधना करती हैं और आराधना के फलस्वरूप आप क्या चाहती है? मैंने किसी कथाओं में आपसे बातचीत की हैं तब तीन शब्दों का प्रयोग किया है-आराधना, साधना और उपासना। 'मानस' के किन-किन पात्रों ने आराधना की है, उपासना की है, साधना की है, उसका भी संवाद हुआ है पात्र के संदर्भ में। यहां कुछ ओर सोचें। तीनों शब्द कोई परम लक्ष्य प्राप्ति के लिए ही है। अथवा तो कई लोगों के लक्ष्य मध्यम भी होते हैं, परम न हो; हो सकता है।

लक्ष्य तीन प्रकार के होते हैं-उत्तम, मध्यम और वो शब्द न युझ करूं, लेकिन लघु। आदमी कुछ करता है तो उसके तीन लक्ष्य होते हैं। कई ऐसे हैं जिसका लक्ष्य बिलकुल उत्तम है। उसके आगे कोई लक्ष्य हो ही नहीं सकता। 'उत्तिष्ठित जाग्रत प्राप्यवरान्निबोधत।' ये उत्तमोत्तम लक्ष्य विवेकानंदजी का रहा। और वो जानते थे कि साधना क्षुरस्य धारा है। निशिता दुरत्यया है। बड़ी दुर्गम है। और विवेकानंदजी कहते हैं, मैं नहीं कहता, उपनिषद का ऋषि कहता है।

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गम पथस्तत् कवयो वदन्ति।।

तो उत्तम लक्ष्य होते हैं कई लोगों के। तुलसी 'विनयपत्रिका' में जो-जो पद लिखते हैं। मैं आपको निमंत्रित करूं कि कभी आपको समय मिले तो 'विनयपत्रिका' के पद का स्वाध्याय करें। मुझे जब अवसर मेरे गुरु देंगे, कृपा करेंगे और जोग, लगन, ग्रह, बार, तिथि होगी तो मैं एक बार आपके सामने मुखर होऊंगा 'मानस-विनयपत्रिका।' जिनमें प्रत्येक पद

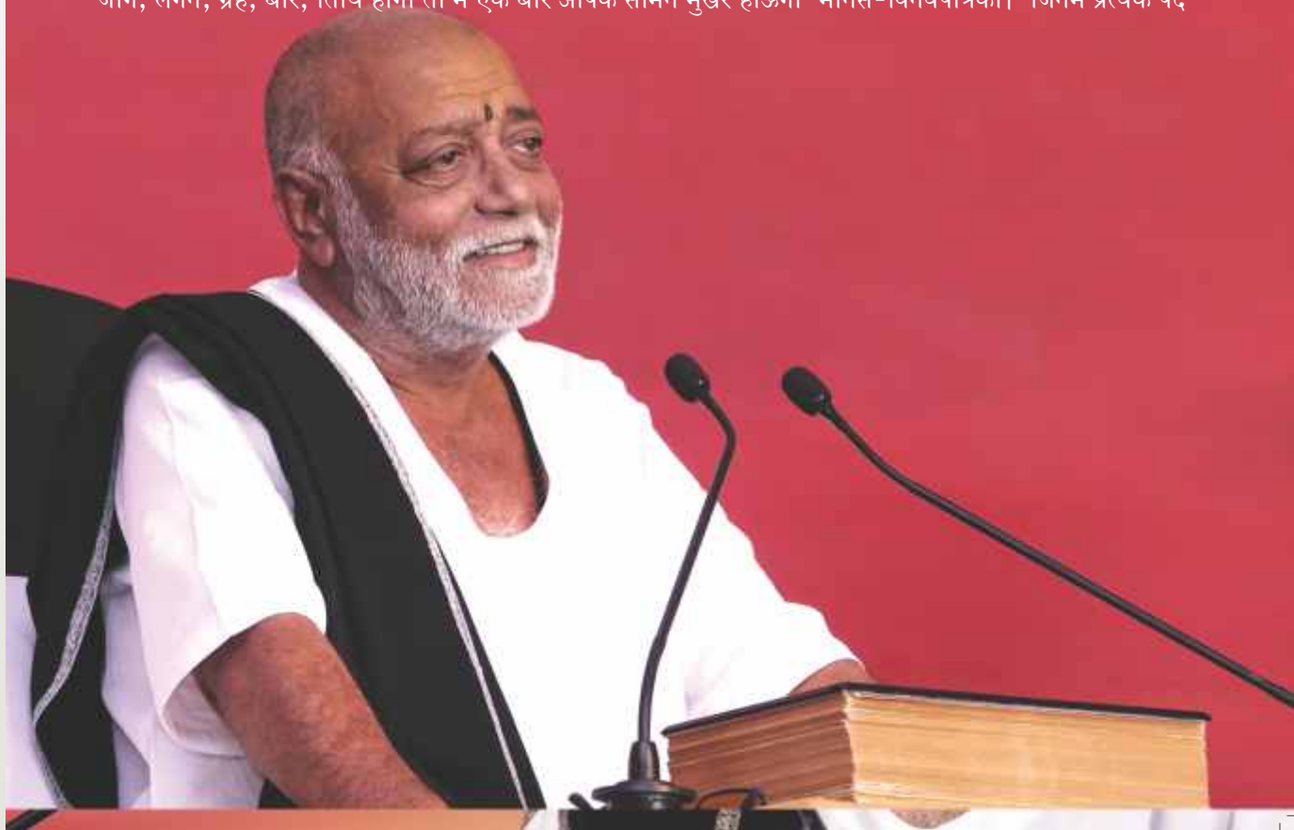

निरंतर उत्तम लक्ष्य पद है। गोस्वामीजी वर्णन हर पद में करेंगे बहुधा लेकिन आखिर में जब पंक्तियां कहते हैं तब उसका लक्ष्य पकड़ा जाता है। 'विनयपत्रिका' में गोस्वामी कन्याकुमारी की स्तुति करते हैं, उसको कई रूप में वो देखते हैं। लेकिन उसकी ओर मैं संकेत करना चाहूंगा, उत्तम लक्ष्य की ओर, उत्तम फलश्रुति की ओर।

रघुपति-पद परम प्रेम, तुलसी यह अचल नेम।
जय महेश-भामिनी, अनेक-रूप-नामिनी।

जो देवी स्तुति करते हैं मेरे गोस्वामीजी। तो कौन हैं वो? शुरू करते हैं, जय महेश भामिनी, हे महेश मुखचंद चकोरी, तेरी जय हो, 'जय महेश मुख चंद चकोरी।' तेरे अनेक रूप, अनेक नाम है। जैसे 'विष्णुसहस्र नाम' है ऐसे दुर्गा के भी सहस्र नाम है। तो दुर्गा के अनेक रूप हैं। तू अष्टरूपा है, तू द्वादशरूपा है, तू नवरूपा है, तू सहस्ररूपा है। तुलसी कहते हैं, कोई भी गिनती कम पड़ेगी इसलिए तेरे अनेक रूप हैं। और तेरे रूप तो अनेक हैं लेकिन तत्त्वतः तू एक है।

जय महेश-भामिनी, अनेक-रूप-नामिनी,
समस्त-लोक-स्वामिनी, हिमशैल-बालिका।

हे हिमालय की कन्या, सीधा कन्याकुमारी संकेत हिमशैल बालिका। क्या-क्या रूप गोस्वामीजी की नज़र में माँ के हैं! जय महेश भामिनी। मैंने आपसे निवेदन किया था कि मातृशरीर का तीन रूप बहुधा प्रसिद्ध है। कन्या, भामिनी(पत्नी) और माता। फिर बहन हो, ये सब पेटा विभाग है; ये उप सम्बन्ध है। मूल तीन रूप में गोस्वामीजी प्रस्तुत करते हैं।

जनकसुता जग जननी जानकी।
अतिसय प्रिय करुना निधानकी।।

ये त्रिरूपा है-कन्या, पत्नी, माँ। 'जय जय गिरिबरराज किसोरी।' कन्या। 'जय महेस मुख चंद चकोरी।' पत्नी, भामिनी। और 'जय गजबदन षडानन माता।' तीन रूप। और इसका आध्यात्मिक अर्थ ये होता है कि कन्या कायम सत्य है। सत्य कुंआरा होता है। कन्या का मतलब ही सत्य है। सत्य कन्या होती है। एक बालिका को देखो; बालक और बालिका, कुमार और कुमारिका में सत्य की मात्रा देखो तो कुमारिका में ज्यादा होगी। बहुत ऋषि दृष्टि से यदि देखा जाये तो। हम जैसों की दृष्टि से देखने में जरा मुश्किल हो सकता है। हमारी आंखों की मर्यादा है। मैं बीच में बोल रहा था कि व्यासपीठ से जो कुछ गुरुकृपा से बोला जा रहा हैं, मैं भी तो एक निमित्त हूं; मैं भी तो एक वाद्य हूं। कोई मुझे बजा रहा है। अभी तक तो पूरी सभानता के साथ समझता हूं कि मैं भी एक उपकरण हूं। मुझे कोई बजा रहा है। तो जैसे कृष्ण अर्जुन को कहते हैं कि मेरे विश्वरूप देखना है तो तेरी ये आंखों से काम नहीं चलेगा। मैं तुझे दूसरी आंखें दूं। 'दिव्यं ददामि ते चक्षुः।' वैसे एक स्तर का संवाद जब शुरू होता है, मैं और आप उसको सुनते हैं तब उसको पचाने के लिए मुझे लगता है कान भी गुरु देता है। उसके लिए विशिष्ट कान चाहिए जिसको मेरी व्यासपीठ श्रवण विज्ञान कहती हैं। लिसनिंग सायन्स, एक श्रवण विज्ञान, एक सुनने की विद्या। कान भी गुरु देता है तब कुछ बातें हमारी पकड़ में आती है। हम जैसों की दृष्टि में न भी आये लेकिन ऋषि दृष्टि से यदि देखा जाये तो कन्या माने सत्य। विवाहिता माने प्रेम। बिलकुल स्पष्ट है। कन्या है सत्य, सत्य है कन्या। और पत्नी है प्रेम। यदि प्रेम नहीं है तो वो पत्नी भी नहीं है; एक घसीटा जा रहा मज़बूरी का सम्बन्ध है। ये साहस नहीं करना चाहिए, जहां प्यार नहीं।

दर्दने गाया विना रोया करो।
प्यारमां जे थाय ते जोया करो।
लो हवे 'कैलास' खुदने कांध पर,
राह सौनी क्यां सुधी जोया करो?

कैलास पंडित की गुजराती गज़ल है।

ये ज़ुबां से कही नहीं जाती।
ज़िन्दगी है कि जी नहीं जाती।।
एक आदत-सी बन गया है तू,
और आदत कभी नहीं जाती।
-दुष्यंत कुमार

तो हमारी चर्चा चल रही है, जिस जीवन में प्रेम नहीं है वो जीवन रस्म और रिवाजों के कारण घसीटा जा रहा है। इसलिए व्यासपीठ कहेगी, कन्या है सत्य। पत्नी है प्रेम; पति समाहित है उसमें समझ लो। पति-पत्नी में यदि प्रेम नहीं तो क्या? और माँ है करुणा। कन्या है सत्य, पत्नी है प्रेम और माँ है करुणा।

हे हिमालय की कन्या, तुम महेश भामिनी हो। तेरी जय हो। तेरे अनेक रूप, तेरे अनेक नाम है। तू समस्त लोक की स्वामिनी है, माँ है। हे हिमशैल कन्या, तू उसकी

बालिका है। लेकिन हर एक पद का तुलसी का अंतिम लक्ष्य जो है। तीन प्रकार के लक्ष्य है। उत्तम, मध्य, लघु। उत्तम लक्ष्य है जो तुलसी 'विनय' के हर पद में करीब-करीब बहुधा वहीं ले आते हैं। 'रघुपति-पद परम प्रेम, तुलसी यह अचल नेम।' मेरा उत्तम लक्ष्य ये है कि रघुकुल, रघुपति के चरणों में मेरा परम प्रेम। ये परम लक्ष्य।

परम प्रेम पूरन दोउ भाई।
मन बुधि चित्त अहमिति बिसराई।।

तो 'रघुपति-पद परम प्रेम, तुलसी यह अचल नेम।' तुलसी कहे, अटल, न मिटनेवाला, अखंड प्रेम, यही नेम हो, यही मेरा व्रत हो कि मेरे ठाकुर के चरण में मेरा परम प्रेम हो। 'देहु ह्वै प्रसन्न पाहि प्रणत-पालिका।।' रघुपति पद परम प्रेम मुझे दे क्योंकि तेरे शरण में कोई आर्त बनकर आये तो तू प्रणत को पालन करनेवाली है। इसलिए मेरा उत्तम लक्ष्य है रघुपति पद परम प्रेम।

कभी 'विनय' को केन्द्र में रखकर चर्चा करेंगे। मनोरथ तो है। मनोरथ बहुत करते हैं। खबर नहीं, कितनी-कितनी में जाहिरात कर चुका हूं! ये कथा करेंगे, ये कथा करेंगे! अल्लाह जाने! लेकिन मैं इसलिए जाहिरात करता हूं कि उसको कम्पलसरी मुझे दूसरा जन्म देना पड़े। मैं बेकार नहीं बोले जा रहा। क्योंकि यहां से बोल रहा हूं। ये मेरी उम्मीद इतनी नहीं पूरी करेगा कि मुझे ये कहना है, ये कहना है तो फिर जन्म देगा। जन्म देगा तो आप भी आईयेगा। यदि आप मुक्तिवांछु हैं तो मुक्ति हो ही गई यार! भगवतकथा मुक्ति का पर्याय है। सब छोड़कर तो यहां बैठे है यार!

चरण बंदि बिनौ सब काहू।
देहि रामपद नेह निबाहू।।

अंतिम लक्ष्य रामपद नेह। रामचरण रति, रामचरण प्रेम। तो आदमी क्या चाहता है? किसकी आराधना करता है? जो सप्तऋषि पूछ रहे हैं, हे तपस्या! स्वयं तपस्या से बात करते हैं, अब उमा से नहीं, साक्षात् तपस्या से बात करते हैं कि आप क्या चाहती हो? कौन-सी आराधना करती हो?

तो मेरी व्यासपीठ ने आपसे संवाद किया है, साधना, आराधना और उपासना। बिलग-बिलग सन्दर्भ बातें हुई है। विवेकानंदजी ने मुझे लगता है तीनों किया। ये आदमी ने तीनों किया। उसने साधना शक्ति की। मूल साधना धारा तो ठाकुर से जो आई है वो तो दुर्गा की ही साधना आई। शक्ति की साधना की जाती है और शिव की आराधना की जाती है और शिव की आराधना का मेरा मतलब यहां आप शिवलिंग लेकर उसको अभिषेक कर, ये तो है ही। यस, आप 'रुद्राष्टक' गाओ, आप 'महिम्न' गाओ, शंकराचार्य भगवान ने जितने शिव के स्तोत्र लिखे उसका पारायण करो, गाओ; संगीत में गाओ, रागों में गाओं, ये तो है। लेकिन जिसमें विश्व का कल्याण छिपा है, ऐसा शिव संकल्प भी विवेकानंद की शिव आराधना थी। जिसमें समस्त विश्व का कल्याण छिपा वो शिव संकल्प जो यहां से उठा कि मेरे भारत उत्थान कैसे हो? ये ऋषियों का राष्ट्र आदित्य से भी ज्यादा चमकता था। एक समय भारत की भूमि पर सूरज जब आता था तो सुरतत्त्व भी थोड़ा संकोच होता है कि ये कौन देश है जिसमें इतने तेजस्वी महापुरुष प्रकट होते हैं! वो देश की क्या दुर्दशा हुई है विवेकानंद के समय में जब उसको ये दिखा, तब यहां उसने तीन दिन तीन रात शक्ति की साधना की, जहां स्वयं कन्याकुमारी ने एक पैर से तपस्या की।

कहते तो हैं कि पहले यहां भी एक मंदिर था उपर। बताते हैं कि कोई काल पहले, यहां भी थोड़ा एक माताजीजी का कुछ था-ऐसा बताते हैं। बिलग-बिलग इतिहास मिलते हैं। लेकिन विवेकानंद केन्द्र ने बहुत विश्व उपकारक काम किया साहब, ये संभाल लिया। साधना थी शक्ति की; आराधना थी शिव की। शिव आराधना का मेरा मतलब है विश्वकल्याण का शिवसंकल्प, राष्ट्रकल्याण का शिवसंकल्प। हमारी सनातन और वैदिक परम्परा की मूल रूप में स्थापना हो; उसका पाटोत्सव हो। उसका शिवसंकल्प ही उसकी शिव आराधना थी। और उपासना थी रामकृष्ण की। उपासना का मतलब है बैठना। उपासना मीन्स निकट बैठना। और ये दूसरे अर्थ में भी और विवेकानंद के अर्थ में रामकृष्ण की माने एक जो बुद्धपुरुष राम, उसके पास उसकी उपासना, बैठना। मै आपसे प्रार्थना करूं, बुद्धपुरुष के पास साधना करने की जरूरत नहीं। आप प्रमादी मत बन जाना। लेकिन बुद्धपुरुष के पास यदि हम कभी पहुंच जाये; कोई ऐसा बुद्धपुरुष, पहले तो मिलना मुश्किल है; मिल जाये तो पहचानना मुश्किल है, दोनों समस्या है। आज कलिकाल में मिलना भी तो मुश्किल है। मिले तो पहचाना न जाये। लेकिन मेरी समझ ये बनी है कि परम सद्गुरु के पास उपासना का मतलब है चुपचाप बैठ जाओ। विवेकानंदजी की उपासना है रामकृष्ण। उसके पास ये बैठा है। उसकी आराधना है विश्वमंगल का शिव संकल्प और उसकी आराधना है शक्ति की, दुर्गा की।

विवेक ने की शक्तिसाधना। विवेक ने की थी शिवआराधना। विवेक ने की थी रामकृष्ण उपासना। साधना में बहुत कष्ट होता है। साधना आदमी को चूर-चूर कर देती है। आराधना इससे सरल है। हमारे सौराष्ट्र के भजन परम्परा में भजन की एक विधा को आराध करते हैं। साधना में कर्म की प्रधानता है। ध्यान देना साधक भाई-बहन, प्रत्येक साधना में कर्म प्रधान है। उसमें हमें कुछ करना पड़ता है। हमारे यहां तीन शब्द है-मन, वचन और कर्म। साधना में कर्म की प्रधानता है। आराध में कर्म प्रधान नहीं, वाणी प्रधान है, वचन प्रधान है। जितना गा सको गाओ बस। केवल गाता है, साधक पुकारता है। याद रखना, आराध में वचन की प्रधानता है। साधना में कर्म की प्रघानता है। साधना कर्मकेन्द्री होती है। आराधना वचन, वाणी दर्दीली पुकार उसी केन्द्री होती है। और उपासना जो निकट बैठने की बात है वो है मनप्रधान। मन को बहुत आराम मिले।

सुकूं मिलता है मन को करार आता है।
सामने जब मेरा यार होता है।

एक सुकूं, एक शांति होती है। अच्छा लगता है। तो ये तीन हैं। विवेकानंद की साधना है शक्ति की; आराधना है शिवसंकल्प की और उपासना है ठाकुर रामकृष्ण की।

तो बाप! मैंने पहले तो दूसरे सन्दर्भ में कहा होगा। मैं कहता रहा कि साधना 'मानस' में अहिल्या ने की। अहिल्या ने साधना की। बहुत तपी है, बहुत तपस्या की। और शबरी ने आराध किया है; आराधना की है शबरी ने। और त्रिजटा ने न साधना, न आराधना, केवल जानकी की उपासना की है। किशोरीजी के पास केवल बैठी होती थी त्रिजटा और धन्य-धन्य हो गई। तो यहां आराधना की चर्चा पूछते हैं सप्तऋषि कि भवानी, किसकी आराधना कर रही है? आखिर में वो तो कहते हैं, ये आराधना शिव की थी। शिव के लिए जन्म हारने को तैयार थी, समर्पित थी। तो आराधना शिव की थी। क्या तुम चाहती हो? दूसरा प्रश्न, आपकी चाह क्या है? इस आराधना के बाद तुम्हें क्या चाहिए? आराधना का फल क्या चाहती हो? कोई भी साधक कुछ भी करता है तो स्वाभाविक हम जीव स्वभाव के कारण फलाकांक्षी होते हैं, स्वाभाविक है और न हो तो भी फल तो आएगा ही। तो तुम्हारी क्या चाह है? हे भवानी तू बता, तू चाहती क्या है? तेरी इच्छा क्या है? इसलिए पंक्ति के दो शब्द पर मैंने आपका विशेष ध्यान चाहा कि आराधना और इच्छा क्या है? और भवानी न धर्म चाहती है, न अर्थ चाहती है, न काम चाहती है। पतिहित के लिए तो उसने सब भोग छोड़ दिए एडवान्स में। अब क्या काम चाहिए उसको? और उसको मोक्ष नहीं चाहिए। भवानी का इच्छित फल धर्म नहीं, अर्थ नहीं, काम नहीं, मोक्ष नहीं। तो क्या है उसका फल? 'जन्म जन्म शिवपद अनुरागा।' मानो मुझे जन्म-जन्म शिव चरण मैं प्रीत हो।

तो हमारी मूल चर्चा पहले जो चल रही थी कि उत्तम लक्ष्य, मध्यम लक्ष्य और लघु लक्ष्य। उत्तम लक्ष्य है परम का प्रेम। मध्यम लक्ष्य है रुचि भेद। जिसकी जो रुचि वो मध्यम फल को चाहता है। भजन भी करेगा तो भी थोड़ा चाहेगा कि कम से कम मैं भजन कर रहा हूं उसकी किसी को जानकारी मिले। मध्यम फल इच्छुक वो है जो साधना तो करता है लेकिन साधना कोई जाने। किसी को पता लगे कि मेरी साधना ये है। मेरे बारे में कुछ-कुछ जाने। 'दोहावली रामायण' में तुलसी कहते हैं, चार वस्तु कलियुग में बिगड़ चुकी है। एक धर्म की चर्चा कर रहे हैं तुलसी 'दोहावली' में। एक व्यवहार की चर्चा कर रहे हैं। एक स्नेह की चर्चा कर रहे हैं। और एक आचार की चर्चा कर रहे हैं। कलियुग में धर्म कैसा हो गया? तो तुलसी कहे-

दंभ धरम कलि सहित सब छल सहित व्यवहार।

चार-चार मुद्दा उठायें और चार में सब आ जाता है। आदमी-आदमी के बीच का व्यवहार एक। धर्म दो। स्नेह, प्रेम ये तीसरा और चौथा व्यक्ति का आचार। कलियुग में सब धर्म दांभिक हो गया। लघु फल तो वो है जो करता ही नहीं है और केवल पाखंड करता है! कुछ नहीं करता। कलियुग में धर्म में दंभ आ गया। हम अपनी ओर देखें तो भी प्रतीत होता है, हम दंभ करने लगते हैं यार! लेकिन कुछ भी न करें और केवल दूसरों को दिखाने के लिए करे तो वो लघु फल है। तुलसी कहते हैं, कलियुग में सबका व्यवहार कपटयुक्त है। मानो सब व्यवहार निभा रहे हैं बस, बाकी कुछ नहीं है। न कोई दिल में कोई भाव, न कुछ। ये कलियुग का व्यवहार। कैसे हो? क्या कर रहे हो? ठीक हो? बहुत ख़ुशी हुई आपको मिलकर के! तो तुलसी ने इतने साल पहले लिखा, ये सब स्पष्ट दिखता है कि सब धर्म दम्भयुक्त लगने लगा। एक दूसरे के बीच जो व्यवहार है वो छल से भरा है। स्नेह में स्वार्थ छिपा हुआ है और आचार मनघटित है।

तो सप्तऋषियों का प्रश्न है, भवानी, तू किसकी आराधना कर रही है और तेरा इच्छित फल क्या है? भवानी को सप्तऋषि ने पूछा तो जवाब देने में मन में संकोच होने लगा कि मेरी बात मैं साफ़-साफ़ बता दूंगी मर्म तो ये मेरी मजाक करेंगे। मैं कैसे समझाऊं कि महाराज, मेरा मन हठी हो चुका है। किसी की सिखावन नहीं सुन रहा है। मेरी बात आपको अविवेकी की बात लगेगी और है भी क्योंकि मैं सदा-सदा शिव को भरथार के रूप में पाना चाहती हूं। शिव को पाना बारि पर दीवार बनाना है, असंभव है। शिव की सदा प्राप्ति के लिए साधना करना वो बिना पंख उड़ने का विफल प्रयास है। लेकिन मन हठ पर आ गया। किसी की सुनता नहीं। जब मन गांठ बांध ले, किसी उत्तम लक्ष्य की तो अनादर मत करना लेकिन दूसरों के अभिप्राय को बहुत सुनना मत।

तो भाई-बहन, ये बहुत बड़ी दीक्षा है हम जैसों के लिए। जिसको अध्यात्म के मार्ग में जाना है, सत्य के मार्ग में जाना है, प्रेम के मार्ग में जाना है, करुणा के मार्ग में जाना है उसको किसी की सुनना मत। लोक तर्क करेंगे, सिखावन देंगे। सुनना मत। कर्तव्य कर्म का त्याग न करो प्लीज़, लेकिन अवसर है, परिवारवाले अनुकूल है और आप भी दायित्व निभाते कथा में सत्संग के लिए आते हो, ऐसे समय में कोई कुछ भी आपके सामने सुनाने आये तो सुनना मत। सुनोगे तो भटक जाओगे। कोई ये साधन, कोई ये साधन, कई साधन बताएंगे। एक पकड़ लो।

भवानी के, कन्याकुमारी के वचन को सुनकर ऋषि हंस पड़े खुल्लें! मजाक कर दी। हे लड़की, हे बेटी, हे कन्या, तेरा कोई दोष नहीं है। तेरा बाप जो जड़ ठहरा। पहाड़ की बेटी हो, पत्थर की बेटी हो। कोई विवेक नहीं तुममें। अरे कन्या! नारद का उपदेश सुनकर किसी का घर बसा है कभी? नारद का उपदेश जिन-जिन लोगों ने सुना है सब भवन छोड़कर भिखारी बने हैं! ये आदमी अकेला है ना, पूरी दुनिया को अकेला करना चाहता है। फिर सप्तऋषि परीक्षा करने आये इसलिए भवानी से कहते हैं, नारद का उपदेश किस किसने सुना और किसकी क्या स्थिति हुई, सुन ले।

दच्छसुतन्ह उपदेसेन्हि जाई।
तिन्ह फिरि भवनु न देखा आई।।
चित्रकेतु कर घरु उन घाला।
कनककसिपु कर पुनि अस हाला।।

पहला दृष्टांत सप्तऋषि ने दिया कि दक्ष राजा के पुत्रों को नारद ने उपदेश दिया तो बेचारा कभी घर में आये ही ना! अब कथा ऐसी है, नारद पधारे तो सब सत्संग में बैठ गए। अब सब करीब-करीब विवाह के योग्य हो चुके थे। सब बैठे थे और बाबा ने वैराग्य का जो सत्संग सुनाया कि ये सब प्रपंच मिथ्या है। नारी बंधन है। दुःखी-दुःखी हो जाओगे! इतनी सुंदर काया मिली है, इतनी ऊर्जा है। तुम बस परम पद पा लो। ऐसी त्याग और वैराग्य की बातें कही तो जैसे बाबा का प्रवचन पूरा हुआ और वो सीधे हिमालय चले गए! नारद का उपदेश लेने से ये हुआ। और पहला दृष्टांत दक्ष पुत्रों का दिया। क्योंकि संकेत किया तुम्हें याद होना चाहिए तुम भी गत जन्म में दक्षकन्या थी। तेरे भाईयों की ये दशा इस आदमी ने की है। अब तू उसकी बात लेकर कहां बैठी है? कोई युवकों को बस तुरंत दीक्षा दे देते हैं! कोई आत्मा जाग गई हो तो बात ओर है। लेकिन बालदीक्षा! छोटे-छोटे बच्चे को दीक्षित कर देना! ये कभी-कभी हिंसा लगती है। नवयुवक हो उसको वैरागी बना देना! अब जब जिसके पूरे विग्रह में उर्जा फूटती है उसको तुम बस! ये संसार ये है; मोक्ष के बिना तुम नरकगामी होओगे, ऐसा करके केवल नासमझी के मूरख अभिप्राय के कारण आप वैरागी बना दो तो समाजसेवा नहीं हो रही है। कोई मेरे पास भी आते हैं, बापू, शादी नहीं करनी। मैंने कहा, नहीं बेटा, सुन्दर शरीर है। पढ़ा-लिखा है; डिग्रीधारी है। अच्छी कन्या खोज। शादी करले बेटा। शादी कर ले। हमारे यहां गुजरात में तो अच्छा हुआ कि हमारे स्थानवाले महन्त भी गृहस्थ होने लगे। मैं स्वागत करता हूं। हमारे बहुत जो विचारशील महन्त है सब गृहस्थ होने लगे हैं साहब! और अच्छा है; समाज को भी खतरा नहीं। समाज भी सुरक्षित हो जाता है ज्यादा। और उसकी ऊर्जा को दिशा मिल जाती है।

ये जैन परम्परा में आये चित्रभानु, चित्रभानुजी। बहुत उस समय उसका नाम जैन धर्म में। मेरे से बहुत उसका स्नेह-आदर रहा। चित्रभानुजी को एक स्त्री से महोब्बत हुई उसकी। और क्या उसका स्थान था साहब इस आदमी का! उसके ग्रन्थ देखो, उसके विचार देखो, उसकी कवितायें भी देखो। आज भी जैन परम्परा में, सभी परम्परा में एक तो बहुत काव्य उसका प्रसिद्ध हुआ।

मैत्रीभावनुं पवित्र झरणुं मुज हैयामां वह्या करे,
शुभ थाओ आ सकल विश्वनुं एवी भावना नित्य रहे।

सीधा-सादा शब्द में आई कविता। तो जब उसने शादी करने का निर्णय किया तो फिर जैन समाज में तो बहुत वो हो गया और पूरी खलबली मच गई! जब उसका पहला इन्टरव्यू आया, मुझे बहुत अच्छा लगा। अमेरिका में, न्यूयोर्क में जब पहली बार मिलना हुआ तो मैंने प्रणाम किया। महाराजजी, मैंने कहा, आपने जवाब बहुत सुन्दर दिया। उसको कहा कि आप जैनधर्म की परम्परा को छोड़कर गृहस्थ हो गए! ये क्या आपने किया? आप पर कितने लोगों की आस्था थी? उसने जवाब बहुत अच्छा दे दिया कि वेश के साधु से वृत्ति का साधु रहना ज्यादा अच्छा है। मुझे वेश का साधु नहीं रहना था। क्योंकि मेरी वृत्तियां भटक रही थी। तो समाज को धोखा देना वो ठीक नहीं था। जिसको जन्म-जन्म की लग गई हो, त्याग, वैराग्य ये बात ओर है। ये कोई अपवाद होते हैं। हमारे कुम्भ मेले होते हैं तो कितने- कितने नव युवकों को मुंडे जाते हैं! ठंडी में ठिठुरते हैं! कई पंथ ऐसे हैं जिसमें ऐसा होता है! शादी कराओ। छोटी उम्र में ये सब करने की क्या जरूरत है? पकने दो वैराग। तिनके की तरह तृष्णा छूट जाये तो तो कोई भी कपड़े में आदमी वैरागी है। लेकिन थोपा गया वैराग्य! ठीक है, छोड़ो!

तो बाप! त्याग परिपक्व न हो, मूल में वैराग वृत्ति न हो। 'त्याग न टके वैराग्य विना।' कोटि उपाय कर ले। जो महापुरुष कहीं-कहीं प्रभु की व्यवस्था में आते हैं कि वो त्याग करके समाधि लेते हैं। छोटी उम्र में स्वामीजी संन्यासी हो गए, छोटी उम्र में निर्वाण। लेकिन विश्व की एक व्यवस्था थी। ऐसे जितने महापुरुष आये हैं उसकी बात ओर है। बाकी युवानी में ये सब करना बहुत प्रेक्टिकल नहीं लगता। बाकी तो जिसको जो करे, करे! लेकिन सबको साधु बनाना ठीक नहीं। सबको साधु बनाना नहीं चाहिए, सबको साधुसंगी बनाना चाहिए कि बेटा, मौका मिले तो कोई साधु का संग करना।

दूसरा दृष्टांत दिया 'चित्रकेतु कर घरु उन गाला।' चित्रकेतु का पूरा घर बिलकुल खत्म कर डाला और हिरण्यकश्यपु की यही दशा की। उसकी पत्नी सगर्भा थी बेटी, और सगर्भा स्थिति में नारद उस हिरण्यकश्यपु की पत्नी से मिले और ऐसा सत्संग सुनाया कि गर्भ में रहा प्रह्लाद सावधान हो गया और क्या हाल हुआ? प्रह्लाद नारद का चेला बन गया और नारद ने जो उपदेश दिया वो गर्भ में प्राप्त किया और वही प्रह्लाद के कारण बाप की मौत हुई। सब जगह नारद कारण है। बेटी, वो अकेला है, पूरी दुनिया को अकेला करना चाहता है। इसलिए तू उसका उपदेश क्यों सुनती है? नारद की सिखावन बेटी, जो नर-नारी ने ली है वो घर छोड़कर सब भिखारी बन गए हैं! उपर से अच्छा भेष धारण करनेवाला, मन का कपटी, अपने समान सबको कर देनेवाला, ऐसा इरादा रखनेवाला, उसके वचन पर तू भरोसा रख रही हो? उसकी वाणी पर विश्वास कर रही हो? और जो सहज उदासीन रहता है उसको पति चाहती हो? स्वाभाविक उदासीन रहने का जिसका स्वभाव है ऐसे शंकर को पति के रूप में पाने से तुम्हें क्या फायदा होगा? नारद के वचन पर विश्वास न कर बेटी और शंकर को पाने की ज़िद्द छोड़ क्योंकि ये कैसा है?

निर्गुन निलज कुबेष कपाली।
अकुल अगेह दिगंबर ब्याली।।

कैसा है शंकर? सब गुरु की भी आलोचना कर रहे हैं! इष्ट की भी आलोचना कर रहे हैं! कैसा है शंकर? बिलकुल निर्गुण है। दो अर्थ है। नेगेटिव अर्थ है, कोई सद्गुण नहीं है उसमें। पोज़िटिव अर्थ है, ये निरंजन निराकारी है। ना उसमें रजोगुण है, ना तमोगुण है, ना सतोगुण है। वो गुणातीत है। दिगंबर रहता है। भस्म लगाता है। इतने लोग दर्शन को जाते हैं मंदिर में; बाबा दिगंबर बैठता है! निर्लज्ज नहीं तो क्या है? और कुबेश, कोई वेश ठीक है उसका? और बेटी, चलो, निर्गुण है, निर्लज्ज है, कुबेश है लेकिन कपाली है! कपाली मीन्स मरे हुए मुर्दों की खोपड़ी के कपाल की माला गले में धारण करता है मुंडमाला; उसको कपाली कहते हैं। खोपड़े की माला पहनते हैं। अकुल; शिव का कौन कुल? रघुकुल? यदुकुल? असुर कुल? सुर कुल? कोई कुल नहीं। अगेह, घर नहीं। कोई घर नहीं है। दिगंबर; कपड़ा पहनता नहीं और ब्याल-सर्प लपेटता है! ऐसे वर को प्राप्त करने से तू क्या सुख पायेगी? तो नारद की आलोचना करके, महादेव की निंदा करके यहां सप्तऋषि भवानी की परीक्षा कर रहे हैं। शिव ने कहा था तो प्रेमपरीक्षा कर रहे हैं। भवानी जो प्रत्युत्तर देनेवाली है, ये पूर्ण शरणागति के जवाब है। उसकी चर्चा हम कल करेंगे।

भगवान राम का जन्म महोत्सव कल मनाया। एक महीने तक आयोध्या में उत्सव बना है। नामकरण संस्कार का समय हुआ। ज्ञानी गुरुदेव को बुलाया।

कौशल्यानंदन, श्यामवर्ण, अभिराम अति सुन्दर राघवेंद्र के सिर पर हाथ रखते हुए जिसका नाम लेने से विश्व को विराम, आराम, विश्राम प्राप्त होगा इस बालक का नाम वशिष्टजी ने राम रखा। राम के समान ही वर्ण थोड़ा सांवरा, शील, स्वभाव कैकई का पुत्र जो राम के बराबर ही शक्ल और सूरत रखनेवाला, जो कैकई का पुत्र है उसका नामकरण करते हुए वशिष्ठजी ने कहा, ये बालक का नाम लेने से विश्व का भरण पोषण होगा। इसलिए मैं इसका नाम भरत रखता हूं। भरत के दो रूप माने गए। एक, भरत प्रेममूर्ति है। दूसरा, भरत त्यागमूर्ति है। और आदमी को परिपूर्ण रूप से पोषित और पूर्ण प्रेम ही कर सकता है और त्याग ही कर सकता है। तो ये त्यागमूर्ति और प्रेममूर्ति का सुमिरन जो करेगा उसका वो भरण-पोषण करेगा; वो पुष्ट कर देगा। किसी का शोषण नहीं होगा, सबका पोषण होगा भरत नाम से। सुमित्रा के दो पुत्र, उसमें जिसका नाम सुमिरन करने से शत्रुता का नाश होगा। वैरी नहीं, वैर खत्म हो जाएगा; दुश्मन नहीं, दुश्मनी मिट जाएगी। इस बालक का नाम मैं शत्रुध्न रखता हूं। समस्त लक्षण के धाम है, शेषनारायण के रूप में समस्त जगत का आधार हैं, परम उदार हैं उसका नाम वशिष्ठजी ने लक्ष्मण रखा। चारों भाइयों का नामकरण संस्कार करके वशिष्ठजी ने कहा, राजन्, ये आपके पुत्र तो है ही, लेकिन वेदों के सूत्र है; वेदतत्त्व है।

व्यासपीठ कायम कहती रही यदि हम रामनाम जपते हैं, राममन्त्र जपते हैं, तो बाकी तीन भाईयों का जो नाम है, नाम जप करनेवालों को चाहिए उसका आचार हमारे जीवन में हो। रामनाम का उच्चार करनेवाले को चाहिए भरत की तरह सबका पोषण करे। किसी का शोषण न करे। दूसरा, रामनाम जपनेवाले को चाहिए कि वो किसी से शत्रुता न रखे। जिन-जिन ने राम भजन किया है उसके शत्रु तो दुनिया में आये ही हैं; आते ही रहते हैं। ये तो क्रम है। लेकिन भजन करनेवालों को चाहिए कि वो शत्रु के प्रति भी शत्रुता न रखे तब नामउच्चार सार्थक होगा। तो किसी के प्रति द्वेष नहीं, वैर नहीं, शत्रुता नहीं। ये रामनाम उच्चारक के लिए एक आचार है। और तीसरा आचार रामनाम जपनेवाले को चाहिए जितने लोगों का वो आधार बन सके। तो मेरे भाई-बहन, यदि हम रामनाम जपते हैं, रामकथा गाते हैं, रामकथा सुनते हैं, रामसिमरन करते हैं तो हमारा कर्तव्य है रामनाम के मंगलमय उच्चार के साथ ये मंगलमय आचार जरूरी है।

समय बीतता चला। चूड़ाकरण संस्कार हुआ। यज्ञोपवित संस्कार हुआ प्रभु का और फिर यज्ञोपवित धारण करके वशिष्ठ आश्रम में भगवान विद्या प्राप्त करने गए। अल्पकाल में सब विद्या प्राप्त की। समाज शिक्षित बने। विवेकानंदजी का भी आग्रह रहा कि आखिरी व्यक्ति तक शिक्षा पहुंचे। और मैं राजी हूं, कल जिस तरह यहां समारम्भ में बताया जाता था कि विवेकानंद केन्द्र कहां-कहां तक शिक्षा की, आरोग्य की, विध-विध प्रकल्प लिए सेवा में जुटे हैं अपनी क्षमता के अनुसार। तो ये होना चाहिए। राम स्वयं शिक्षा लेने गए हैं। आदमी को पढ़ना चाहिए, पढ़ाना चाहिए। अल्पकाल में भगवान ने सब विद्या प्राप्त कर ली है और जो उपनिषदि विद्या पढ़े हैं वो अपने जीवन में उतार रहे हैं। भगवान जो विद्या प्राप्त की है उसके मुताबिक अपना आचरण कर रहे हैं।

विश्वामित्रजी की कथा लाते हैं। सिद्धाश्रम में बाबा यज्ञादि सब अनुष्ठान करते हैं। मारीच और सुबाहु के भय के कारण अनुष्ठान पूरा नहीं हो पा रहा है। विश्वामित्र चिंतित होते हैं कि परमात्मा के बिना इस आसुरी वृत्ति का निर्वाण कौन करेगा? विश्वामित्रजी अयोध्या आते हैं। राम-लक्ष्मण की मांग करते हैं। इस कथा का हम कल थोड़ा आगे वर्णन करेंगे।

मातृशरीर का तीन रूप बहुधा प्रसिद्ध है। कन्या, पत्नी और माता। कन्या है सत्य, सत्य है कन्या। और इसका आध्यात्मिक अर्थ यै होता है कि कन्या कायम सत्य है। सत्य कुंआरा होता है। और पत्नी है प्रेम। यदि प्रेम नहीं है तो वो पत्नी भी नहीं है; एक घसीटा जा रहा मज़बूरी का सम्बन्ध है। जिस जीवन में प्रेम नहीं है वो जीवन रस्म और रिवाजों के कारण घसीटा जा रहा है। इसलिए व्यासपीठ कहेगी, कन्या है सत्य। पत्नी है प्रेम; पति समाहित है उसमें समझ लो। पति-पत्नी में यदि प्रेम नहीं तो क्या? और माँ है करुणा। कन्या है सत्य, पत्नी है प्रेम और माँ है करुणा।

साधु सार्वभौम तत्त्व होता है, उनका कोई कुल नहीं होता

आठवें दिन की रामकथा के आरम्भ में पुनः एक बार पराम्बा भगवती कन्याकुमारी के चरणारविन्द को प्रणाम करते हुए, हम सबका गौरव हमारा एक युवा संन्यासी स्वामी विवेकानंदजी के चरणों में प्रणाम करते हुए, संत प्रवर तिरुवल्लुरम् स्वामी को प्रणाम करते हुए, यहां की प्रगट-अप्रगट समस्त चेतनाओं को स्मरते हुए, कथा में उपस्थित आप सभी को व्यासपीठ से मेरा प्रणाम। आप सभी को मकर संक्रांति, पोंगल के त्यौहार की भूरिशः बधाई हो, बधाई हो, बधाई हो। मकर संक्रांति के दिन बहुत से स्मरण आते हैं। ये त्यौहार बहुत महत्त्व का है लेकिन आप मेरी मानसिकता के बारे में पूछे तो मकर संक्रांति को सबसे ज्यादा मुझे याद पितामह भीष्म की आती है। भीष्म की चेतना को भी मैं प्रणाम करूं। और प्रतिदिन की भांति हमारे परम स्नेही पाठकजी ने एक गीत भी सुनाया, संक्षिप्त संचालन किया और जबलपुर से आये विश्व रामायण सम्मेलन के एक स्तम्भ के रूप में काम करते हुए डॉक्टरसाहब जिसने बहुत उदारता से चित्रकूट तलगाजरडा से 'तुलसी एवोर्ड' भी ग्रहण किया था। आपने वो 'रामायण' सम्मेलन में जो वक्ताओं को निमंत्रित किया जो वहां हुआ उसकी स्मृति में ये जो पुस्तिका यहां लोकार्पित करवाई। मैं स्वागत करता हूं। फिर प्रत्येक कथा का सार हमारे विवेकी संपादक नीतिनभाई, बिलकुल अहेतु व्यासपीठ के प्रेमयज्ञ में केवल 'इदं अग्नये न मम।' की वृत्ति से हिंदी में, गुजराती में, और शायद इंटरनेट पर अंग्रेजी में दिया जाता है। और ये सम्पादित रामकथा की पुस्तिका सबको प्रसाद के रूप में मिलती रहेगी। एक बहुत बड़ा काम मेरी दृष्टि में हो रहा है। नीतिनभाई, उसका पूरा परिवार उसमें जुड़ा। और अन्य कई पढ़े-लिखे भाई-बहन वो भी अपनी आहुतियां उसमें डालते हैं और ये कथा की पुस्तिका रामकथा के रूप में आपके हाथ में प्रसाद के रूप में आती है उसकी मुझे मेरी व्यासपीठ को बहुत प्रसन्नता है। मैं इस पूरी टीम को, ये बिलकुल प्रसिद्धि मुक्त प्रयास है, उसको साधुवाद देता हूं। मेरी प्रसन्नता व्यक्त करता हूं।

'मानस-कन्याकुमारी' केन्द्र में रखते हुए 'मानस' के आधार पर हम कुछ संवाद कर रहे हैं। कल का दौर संभालें। कल सप्तऋषि जो परीक्षक बनकर गए हैं कन्याकुमारी के पास जहां वो तप करती हैं और जो सप्तऋषि ने प्रश्न पूछे, हे कन्या, तू इतना कठिन तप क्यों करती है? किसकी आराधना करती है? और आराधना के फलस्वरूप तुम्हें क्या चाहिए? इस मर्म को तू खोलकर बता। भवानी ने कह दिया, ये मेरी जिद्द है, मेरी हठ है, मेरा अविवेक है जो कहो लेकिन पानी पर दीवार नहीं बन सकती फिर भी मैं असंभव को संभव करने के लिए यात्रा कर रही हूं। बिना पंख उड़ान भरना मुश्किल है लेकिन मेरा इरादा है उसी तरह उड़ान भरना। और ये बात सुनकर परीक्षा करने आये सप्तऋषि हंसते हैं और उसके सामने बहुत-सी बातें पेश करते हैं कि नारद का वचन सुनकर दुनिया में कोई सुखी नहीं हुआ है। और फिर भगवान के लिए आठ बातें सप्तऋषि भवानी के सामने रखते हैं कि ये शिव कैसे हैं? गोस्वामीजी के शब्दों में-

निर्गुन निलज कुबेष कपाली।
अकुल अगेह दिगंबरी ब्याली।।

जिस शिव के लिए तू तप कर रही है कन्या वो शिव कैसा है? इससे शादी करके क्या फायदा? जो निर्गुण है, निलज है, कुबेष है, कपाली है, अकुल है, अगेह है, दिगंबर है, ब्याली है। आठ लक्षण। और कल कथा के समापन में व्यासपीठ कह चुकी कि ये आठ वैसे तो दोष है लेकिन दूसरे अर्थ में ये निंदा भरे शब्द व्याजस्तुति मानी गई है। ये आठों लक्षण अष्टमूर्ति शिव की पहचान हैं। ये शिव के आठों लक्षण है। जैसा अभी-अभी नीतिनभाई ने भी कांचीपुरम् कथा में 'रुद्राष्टक' के बारे में कुछ हम सबने गाया और वहां का वक्तव्य याद दिलवाया कि शिव अष्टमूर्ति है। वहां अष्टमूर्ति एक दूसरे सन्दर्भ में कही गई। यहां एक दूसरा सन्दर्भ है। तो शिव की अष्टमूर्ति के बारे में कई दर्शन होते हैं। वहां 'रुद्राष्टक' की कथा के समय जो अष्टमूर्ति शिव के बारे में कहा गया वो शिव की एक मूर्ति है दर्पण। अष्टमूर्ति शिव का एक रूप है दर्पण। शिव हमारा दर्पण है। शिव की दूसरी मूर्ति है दीपक। शिव है हमारा दीया। हम क्या आरती उतारें? शिव है महाज्योति। वो हमें प्रभावित नहीं करता, ये दीया हमें प्रकाशित करता है। प्रभावित करे वो धर्मगुरु हो सकता है, कुलगुरु हो सकता है, त्रिभुवनगुरु नहीं हो सकता। त्रिभुवनगुरु वो है जो हमें प्रकाशित करे। शिव हमें प्रकाशित करते हैं। शिवसूत्र के जरिये कहूं तो अष्टमूर्ति शिव का तीसरा रूप है उपाय। 'गुरुः उपायः।' हमारा कोई ओर उपाय है नहीं। गुरु ही हमारा उपाय है। आध्यात्मिक यात्रावालों को, आध्यात्मिक क्या भौतिक यात्रावालें को भी उसका मास्टर ही उपाय होता है, उसका मार्गदर्शक ही उसका उपाय। शिव की अष्टमूर्ति की चौथी मूर्ति है दिशा। हम भटके हुए हैं। हमारी दिशा शिव है। गुरु ही हमारी दिशा है। पाचवां रूप है दशा। हमारी अवस्था शिव है। हमारी अर्जित की हुई अवस्था नहीं।

कल एक भाई ने पूछा, बापू, त्रिभुवन दादा आपके गुरु हैं। उनके गुरु कौन? उनका नाम तो बताओ! ना मैंने दादा को कभी पूछा कि आपके गुरु कौन, और ना कभी दादा ने बताया। मैं अंदाज कर सकता हूं, मेरे दादा के गुरु 'रामचरितमानस' थे। यही हमारा गुरुग्रन्थसाहिब। और मैं तो बारह स्थानों से गुजरा हूं और सब आप मेरे है तो मेरी बात मैं कह रहा हूं बाकी मैं ये साहस नहीं करता। कोई आत्मश्लाघा समझ ले ये डर है लेकिन कम से कम आप समझ लें। आप मेरा अनुकरण मत करियेगा। मैं शायद आपकी यात्रा का थोड़ा-सा सहायक बन सकता हूं लेकिन मेरे पास रुक मत जाना। दादा की कोई गुरु परम्परा मुझे नहीं दिखती है। यद्यपि हम निम्बार्की हैं उसका मुझे गौरव है। नारद सनकादिक से ये परम्परा हमारी शुरू हुई है और ध्यानस्वामी बापा होते हुए होते हुए, ये आम्बा की एक डाली पके हुए आम लेकर तलगाजरडा में झुकी है। ये इतनी बड़ी पावन परम्परा है लेकिन फिर भी मैं परम्परावादी तो हूं नहीं। निम्बार्कीय परम्परा का कितना बड़ा गौरव है मुझे! और होना चाहिए सबको लेकिन ये परम्परा प्रवाही होनी चाहिए। और जहां बुद्धपुरुष की बात मैं करता हूं वहां तो कोई परम्परा रहती ही नहीं। फिर भी कुछ पड़ाव जरूर होते हैं।

तुम्हारे मोरारिबापू के बारह पड़ाव है। इसमें मैं कैलास को अवस्था कहता हूं। माँ सावित्री और प्रभुदास बापू ये मेरा पहला पड़ाव है जिसने जन्म दिया। माँ अमृत माँ जिसने मुझे ममता दी। ये तीसरा स्थान हो गया। दादा त्रिभुवनदास गुरु, सद्गुरु, उसने मुझे समता दी। और सम देना-सम होना उसको ही ज्ञान कहा है। सब में समता दिखे उसी को तुलसी ने ज्ञान कहा है। समता मिली बुद्धपुरुष दादा से। मुझे आनंद है। उसके बाद आगे बढ़ूं तो विष्णुदेवानंदगिरि से हमें 'भगवद्गीता' मिली। उपनिषद-वेदांत ये ऋषिकेश की देन है। पांच हुए। आगे जाऊं तो जीवणदास दादा की समाधि जो तलगाजरडा में है उससे एक जीवन का मोड़ मिला; एक नागरी मोड़ मिला। क्योंकि ये नरसिंह महेता की परम्परा में है। वहां से जीवन की एक दिशा प्राप्त हुई। उसके बाद यदि मैं आगे चलूं तो ध्यानस्वामी बापा ने चित्त की एकाग्रता दी। कितनी दी है? कितना मैं कर पाया हूं? लेकिन दी जरूर। मैं कितना कर पाया अभी असमंजस हूं। अभी मेरे भरचक प्रयत्न जरूर हैं, प्रामाणिक प्रयत्न; लेकिन दिया तो दाता ने बहुत। कोई भी विषय पर चित्त की एकाग्रता अथवा तो चित्त का ध्यान होना ये शायद सेन्जल की भेंट है, ध्यानस्वामी बापा की भेंट है। उसके बाद तुलसी से तुलसी का समर्पण मिला। तुलसी ने तुलसी का समर्पण दिया और फिर इसी अवस्था की यात्रा में उसके बाद आते हैं शुकदेवजी। शुकदेवजी ने 'भागवत' का रस दिया और थोड़ा अवधूती का अनुभव दिया। शुकदेव को मैं .. मैं नहीं बयां कर सकता! मेरी बारह द्वादशीय परम्परा का एक पड़ाव शुकदेव है। इस स्थान पर शुकदेव है। शुक बहुत प्यारे लगते हैं। उसके बाद आगे जाऊं तो उसी क्रम में आते हैं मेरा हनुमान। हनुमान ने दो वस्तु दी; एक सेवा ओर दूसरा जितना हो सके तैल धारावत् हरिनाम सिमरन। सेवा ओर सिमरन। उससे आगे जाऊं तो फिर जिस कैलास की बात से मैं आगे बढ़ गया वो कैलासपति महादेव, जिस महादेव के कैलास ने, सदाशिव ने जिस त्रिभुवन गुरु ने एक ऊंचाई दी। भले नाम की ही हो। उसके हम लायक है कि नहीं लेकिन साहब ऊंचाई तो दे ही दी दाता ने। क्या कमी छोड़ी? ऊंचाई कैलास की। और इसके बाद भी सर्वोच्च शिखर है ये है 'रामचरितमानस।' ये बारह है कुल। ये बारह बीज है यार!

तो अष्टमूर्ति शिव का एक रूप है दशा, अवस्था। जीव की कोई भी ऊंचाई है ये शिव के कारण है, कैलास के कारण है। यही अवस्था का नाम है। तो दर्पण, दीपक, उपाय, दिशा, दशा। छठ्ठा गुरु है द्वार। अष्टमूर्ति में गुरु द्वार माना गया है। गुरु ही द्वार है, दरवाजा है। इसलिए शीख भाईओं ने बहुत प्यारा शब्द दिया 'गुरुद्वारा।' गुरु का

सांतवां रूप है जिसको वेद के आधार पर भी मैं कहा करता था, दूसरे अर्थ में भी, बीच में यहां भी शायद कुछ कह गया, मृत्यु। गुरु मृत्यु है। और ये तो वैदिक बात है, गुरु मृत्यु है। और एक अष्टमूर्ति का, गुरु प्रत्येक साधक का हृदय है, दिल है गुरु। हम किसके कारण जी रहे हैं यार? गुरु है हमारा दिल, गुरु है हमारा हृदय।

यहां सप्तऋषि की बोली में अष्टमूर्ति है शिव, जिसकी एक पंक्ति में चर्चा सप्तऋषि ने शिव की निंदा के रूप में की है। उसके एक स्वरूप को समझने की कोशिश करें।

निर्गुन निलज कुबेष कपाली।
अकुल अगेह दिगंबर ब्याली।।

यहां सप्तऋषि अष्टमूर्ति का स्वरूप प्रस्थापित करते हैं। शिव का पहला रूप है अगुन, निर्गुण। ये निराकार है, गुणरहित है। सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण से पर है। शिव है गुणातीत। शिव है कालातीत। शिव है मायातीत। शिव है द्वंद्वातीत। शिव सबसे अतीत है, पर है। तो शिव है गुणातीत। ये एक मूर्ति है शिव की। निलज; निंदा में तो ये हो कि उसको कोई लाज नहीं है। आठ प्रकार के बंधन होते हैं इन में एक बंधन लज्जा बताया है। लज्जा को पाश माना है, बंधन माना है। तो शिव का दूसरा रूप है निर्लज्ज, माने कोई पाश नहीं है। वो किसी के बंधन में नहीं हैं।

कुबेष; उसका वेश सुवेश नहीं है, कुवेश है। शंकर का वेश सभ्य नहीं। लेकिन 'मानस' में 'कुवेष' शब्द लेकर एक पंक्ति बड़ी प्यारी आई है। 'किएहुं कुबेषु साधु सनमानू। जिमि जग जामवंत हनुमानू।।' रावण ने सन्यासी का वेश लिया, सुवेश लिया। वेश तो सुंदर लेते हैं, साधु का ले लिया। और हनुमान और जामवंत कुवेश में रहते हैं लेकिन साधुसमाज में उसका सन्मान हो। ब्रह्मतत्त्व वो है जो कुवेश में रहते हैं, कोई टाप-टिप नहीं है ब्रह्म। हां, मूर्तिपूजा हम करे, ठाकुरजी का एक स्वरूप हमारा इष्ट हो। फिर हम वैष्णवी भाव में उसका शृंगार करें, ये बात और है बाकी असल में ये कुवेश है। शिव का एक स्वरूप है कुबेश। ये तीसरी मूर्ति है। 'निर्गुन निलज कुबेष कपाली।' आश्रितों के प्रारब्ध की माला शिव पहनते हैं। मुंडमाला, आश्रितों के मुंड को कपाल को, शंकर धारण करते हैं। इसका मतलब ये है कि ब्रह्मतत्त्व वो है जो आश्रित जीव का प्रारब्ध खुद भोगता है। यद्यपि ब्रह्म है लेकिन जिसका हम आश्रय करते हैं वो परमात्मरूप हमारा प्रारब्ध भोग लेता है। यही वो शरणागति की सुगंध है। हमारे यहां कहा गया है पावनी परम्परा में कि आश्रित का प्रारब्ध सद्गुरु भोग लेता है। ये सही लगता है। ये सही है। जहां नितांत आश्रय है वहां वो भोग लेता है। अकुल; शिव की पांचवीं मूर्ति है, ब्रह्म की पांचवीं जो मूर्ति है वो है अकुल। शिव का कोई कुल नहीं। राम का रघुकुल; कृष्ण का यदुकुल; किसी का सोमवंश; किसीका सूर्यवंश। 'सुरकुल' शब्द भी है, देवताओं का कुल; दानव कुल। तो हम सबका कुल होता है, शिव का कोई कुल नहीं। फिर उसके बाद छठ्ठा रूप है अष्टमूर्ति का अगेह, जिसका कोई घर नहीं। ब्रह्म का क्या घर? क्योंकि ये तो जगनिवास है। परमात्मतत्त्व तो हर एक अणु-अणु में व्याप्त है। उसका कोई घर नहीं; पूरा जगत उसका निवास है। अथवा तो अनेक ब्रह्मांडों जिसमें निवासित है। कुल में एक स्पष्टता और भी है कि जो मूल तत्त्व है अकुल, उसका कोई कुल नहीं। फिर हमारे यहां ऐसा शब्द आया है 'गुरुकुल'; ये स्थान विशेष नाम है। तो ये स्थान के यहां गुरु बैठते हैं, यहां छात्र सीखते हैं, उस स्थान को हमने 'गुरुकुल' शब्द दे दिया है हमारी परम्परा में। 'ऋषिकुल' भी शब्द दे दिया, 'मुनिकुल' भी शब्द दे दिया। बाकी तत्त्वत: कौन कुल? कुछ नहीं। एक शब्द 'साधुकुल' भी आता है। साधुओं का भी कुल क्या? ये तो एक व्यवस्था खातर नाम है बाकी साधुओं का क्या कुल? साधु सार्वभौम तत्त्व होता है, उनका कोई कुल नहीं होता। एक ऐसा द्वार जहां हमको लगता है कि मुश्किल है तो भी हम जाते हैं। ये नीतिनभाई की दो पंक्ति है-

रोज एने द्वार दोड़ी जाउं छुं।
तीर सामे जइ अने विंधाउं छुं।

ये है गुरुद्वार। मैं क्यों गुरुद्वार जाता हूं? रोज़ जख्मी होने के लिए जाता हूं। ये ज़ख्म हजारों, लाखों, करोडों तंदुरस्ती से बेहतर है। आपकी गज़ल है। नीतिनभाई ने 'पाघडी सप्तक' लिखा। ये केवल त्रिभुवन दादा को उसके दिमाग में रखकर उसका भाव है लेकिन प्रत्येक सद्गुरुओं के लिए है ये। तो सात पद लिखे नीतिनभाई ने और 'कविता' ने उसको छापा। मैं देख रहा था सुबह तो मैंने पन्ना फाड़ लिया, 'पाघडी-सप्तक।'

'शब्दनी मरजाद छे आ पाघड़ी।' गुरु की पाघडी, गुरु की जटा, शिव की जटा। शंकरनी जटामां गंगा हती, गंगा नीकळी। मारे तो दादानी पाघडीमांथी रामायणनी गंगा नीकळी। त्रण आंटा हता। एमांथी एक गंगा नीकळी एक आकाशनी; बीजी नीकळी पृथ्वीनी। त्रीजी वळी नीकळी पाताळनी गंगा। त्रण आंटा। त्रणमांथी त्रिपद गामिनी शरू थई 'मानस'नी। मारे तो आ अनुभव छे। आपने अपना भाव पेश किया है।

शब्दनी मरजाद छे आ पाघडी।
मौननो संवाद छे आ पाघडी।
अहिर्निश गुंज्या करे जे श्वासमां,
ए अनाहत नाद छे आ पाघडी।

●

रोज रुदिये राम बनती पाघडी।
व्हाल ने विश्राम बनती पाघडी।
व्हेंचवाने विश्व आखामां हजी,
प्रेमनो पैगाम बनती पाघडी।

आवां सात पदो लख्यां पण ई समस्त गुरुजनों प्रति। ए पाघडी एटले दादानुं स्मरण छे एटले तो आपणने गमे ज। मने गमे एना करतां तमने वधारे गम्युं छे ए मारा माटे आनंद छे। मेरे श्रोता पूछते ही रहते हैं कि दादा के बारे में ओर कहो, कुछ ओर कहो, कुछ ओर कहो। पूछते ही रहते हैं। पाघडीनो महिमा छे। आवी पाघडी पासे पा घडी बेसवानुंये मळी जाय ने तोय बेड़ो पार थई जाय! मारे तो केटलां वरसो बेसवानो अवसर मळ्यो छे! मैं फिर से एक बार कहूं, अपनी संतान को साधु बनने का उपदेश मत दो। कहो, कभी साधुसंगी बनना। साधु पुरुष संग में जाकर बैठना। बाकी साधु बनने की जरूरत नहीं। साधुसंगी बनें।

तो बाप! अष्टमूर्ति शिव का आगे का लक्षण जो है वो अगेह अनिकेत। इश्वर का कोई पर्टिक्यूलर खास निवास स्थान नहीं होता। वो तो चौदह-चौदह भवन में निवास करता है। उसका कोई घर नहीं, कोई गेह नहीं, कोई आश्रम नहीं, कोई स्थान नहीं, कोइ मठ नहीं, कोई पीठ नहीं। 'अकुल अगेह दिगंबर ब्याली।' अम्बर के कई अर्थ हैं। अम्बर माने आकाश भी। अम्बर माने वस्त्र। जैसे कहते हैं पीताम्बर; नीलांबर; श्वेतांबर। वैसे एक शब्द है 'दिगंबर।' दिशा ही जिसका वस्त्र है। दिग् माने दिशा। दिशा ही जिसका वस्त्र है। वस्त्र के लिए एक शब्द है पट; पट माने वस्त्र। पट के कारण हम कुछ छिपाते हैं। शरीर पर हम वस्त्र धारण करते हैं। लज्जा, शालीनता, सभ्यता, मर्यादा के कारण हम इसलिए वस्त्र धारण करते हैं कि हम मर्यादा के कारण अपने शरीर को ढ़ांकते हैं। पट के साथ एक शब्द जुड़ गया 'कपट।' तो ब्रह्मतत्त्व ऐसा है जहां कोई कपट नहीं है। इसलिए उसका कोई वस्त्र नहीं है। सूरज का कोई गणवेश नहीं। ब्रह्म के अंश जो है उसका कोई गणवेश नहीं। उसका कोई वस्त्र नहीं क्योंकि वहां कपट नहीं है। कुछ छिपाने योग्य नहीं है। बिलकुल दिगंबरी। ब्रह्म है ऐसा कपटमुक्त तत्त्व। ब्याली; व्याल माने सर्प; सर्पों को धारण करनेवाला। सर्प माने विष, सर्प माने काल, सर्प माने मृत्यु, सर्प माने एक अर्थ में अभद्रता। जो जगत में सब त्याज्य वस्तु है, अस्वीकार्य है, निषिद्ध है। भगवान शिव ब्रह्म होने के कारण इन निषिद्ध को भी अपना शृंगार बनाते हैं। क्योंकि ब्रह्म की एक समझ है कि जगत में निरर्थक कुछ नहीं है। हमारी दृष्टि खुली है इसलिए हमें कुछ सार्थक, कुछ निरर्थक लगता है। यहां कुछ निरर्थक नहीं।

तो अष्टमूर्ति शिव के ये आठ रूप भी माने गए। अब आगे सप्तऋषि कहते हैं, हे पार्वती, कौन सुख पायेगी तू ऐसे वर को प्राप्त करके? लेकिन सच है, भला आदमी भी लुच्चे आदमी, ठग आदमी, छलिया आदमी के भुलावे में आ जाता है और छला जाता है। फिर आगे बोले, पंच बैठा था, पंच ने निश्चित किया था कि दक्षकन्या सती और शिव का ब्याह हो और शंकर ने कुबूल किया कि आपने कहा तो मैं कुबूल करता हूं, वो ही शिवने वो ही सती को जलवा दिया! सुख से सोता रहता है शंकर। भूख लगे तो भीख मांगकर खा लेता है। सहज एकांत में रहनेवालों को नारी की क्या जरूरत? हे बेटी, अभी भी लौट जा। ये आदमी एकाकी है। भीख मांगकर खा लेता है और सुख से सोता रहता है। लेकिन ये सब शिव के ही लक्षण है। सुख में कौन सो सकता है? जो निर्विकार हो वही। विकारी सो नहीं पाता और अत्यंत विचार करनेवाला भी सो नहीं पाता। शंकर निर्विकार है। 'निर्विकल्पं निरीहं।' न कोई चाह, न कोई इच्छा, न कोई विचार। 'सुख सोवत।' ये ब्रह्म का लक्षण है अथवा तो बुद्धपुरुष का लक्षण है, सुख से सोना। आगे बोले, हे हिमाचल पुत्री, हे कन्या, अभी भी बेटा हमारी कही बात मान ले। हमने तुम्हारे लिए एक बहुत अच्छा वर पसंद कर दिया है। क्या प्रलोभन दे रहे हैं! भयभीत कर रहे हैं! सप्तऋषि कहते हैं, तुम्हारे लिए हमने जो वर खोजा है, अति सुंदर है और पवित्र भी बहुत है आदमी। नखशिख शुद्ध है, सुखद है। जिसके साथ उसका सम्बन्ध होगा वो सुख देगा और शीलवान होगा। हे कन्या, जिसका यश स्वयं वेद गाते हैं, जिसकी कीर्ति स्वयं वेद गाते हैं। जो वर हम आपके लिए पसंद करते हैं, सुंदर है, सुखद है, सुशील है, शुद्ध-बुद्ध है और वेद जिसकी लीलाओं का गान करते हैं।

दूषन रहित सकल गुन रासी।
श्रीपति पुर बैकुंठ निवासी।।

कैसा वर है? दूषन रहित; कोई दोष नहीं उसमें। 'सकल गुन रासी'; समस्त गुणों की खानी है। श्रीपति, लक्ष्मीपति का जो पुर है जिसको वैकुंठ कहते हैं वो वैकुंठ में रहनेवाला माने विष्णु की ओर संकेत है। शिव से ब्याह की बात छोड़ दे। विष्णु कितना सुंदर है! जो सुंदर हो, सुशील हो, श्रीपति पुर वैकुंठ निवासी हो, ऐसा सुंदर वर तुमको लेकर मिला देंगे। सप्तऋषि के वचन सुनकर हमारी कुन्याकुमारी खड़खड़ाहट हंस पड़ी, अरे, क्या नासमझी कर रहे हो बाबा! बाबा, आपने सच कहा था कि ये पहाड़ से प्रगट हुई। मेरा हठ रहेगा, प्राण छूट जायेगा लेकिन हठ नहीं छोडूंगी।

कनकउ पुनि पषान तें होई।
जारेहुं सहजु न परिहर सोई।

कन्याकुमारी की समझ देखो, सोना पहाड़ से ही निकलता

है। लेकिन ये पहाड़ के गुणधर्म त्यागता नहीं। जितना ही जलाओ, इतना चमकेगा लेकिन बदलेगा नहीं। क्योंकि उसका जन्म पहाड़ से है। जितनी उसकी कसौटी करो, ये ज्यादा से ज्यादा चमकीला होगा। मैं भी सोना हूं, पहाड़ की बेटी हूं। आप लाख कसौटी करे लेकिन मैं मेरी बात छोड़नेवाली नहीं।

नारद बचन न मैं परिहरऊँ।

बसउ भवनु उजरउ नहिं डरउँ।।

नारद का वचन मैं त्यागनेवाली नहीं हूं। मेरा घर बसे तो बसे, उजड़ जाये तो उजड़ जाये। बाकी गुरु का वचन मैं नहीं छोडूंगी।

गुर कें बचन प्रतीति न जेही।

सपनेहुँ सुगम न सुख सिधि तेही।।

हे बाबा, गुरु के वचन पर जिसको भरोसा नहीं उसको तो सपने में सुख नहीं मिलता और शुभ स्थिति भी नहीं, सुगति नहीं मिलती। गुरु के वचन पर भरोसा होना चाहिए। और मैं नारद का वचन छोड़नेवाली नहीं हूं। महादेव अवगुण के भवन हैं, जरूर, माना और विष्णु सब गुण का भंडार है, माना। लेकिन जिसका मन जिसके साथ रम जाता है ना, उसको उसी का ही काम होता है। और प्रेम तो गुणरहित होता है बाबा! महादेव में अवगुण और विष्णु में गुण। प्रेम के पास ऐसी आंखें ही नहीं कि ये गुण-अवगुण देख पाए। मन का प्रश्न है जिसका मन जहां रम गया।

जौं तुम्ह मिलतेहु प्रथम मुनीसा।

सुनतिउँ सिख तुम्हारि धरि सीसा।।

वो कहती है कि पहाड़ की बेटी हूं। मेरे मैं समझ कहां है? लेकिन यहां विवेक देखिये। बाबा, बुरा मत लगाना। देवर्षि नारद जो मुझे पहले मिले, इससे पहले जो आप मिल जाते तो आपकी बातें में सिर धारण करती।

अब मैं जन्मु संभु हित हारा।

को गुन दूषन करै बिचारा।।

अब तो मैं शिव के लिए जीवन हार चुकी हूं। अब गुण-दोष का कौन विचार करे महाराज? जहां हार गई हूं, बात खत्म है। सप्तऋषि, आपने यदि संकल्प ही कर लिया है ज़िद पकड़कर के कि हमको शादी ही करवानी है तो 'बर कन्या अनेक जग माहीं।।'

जन्म कोटि लगि रगर हमारी।

बरउँ संभु न त रहउँ कुमारी।।

एक नहीं बाबा, कोटि-कोटि जन्म धारण करूंगी। हिमालय की कन्या की निष्ठा देखिये! कोटि-कोटि जन्म लूंगी लेकिन ब्याहूंगी तो शिव को ही वरना जन्म-जन्म ये कन्या कुमारी रहेगी। क्या शरणागति है! आखिरी गोस्वामीजी कहते हैं-

तजउँ न नारद कर उपदेसू।

आपु कहहिं सत बार महेसू।।

नारद का उपदेश मैं नहीं त्यागूंगी। मेरे गुरु के वचन को मैं नहीं छोडूंगी। शिव स्वयं आकर मुझे सौ बार कहे कि मुझे ब्याहने की ज़िद छोड़, तो भी वो स्वतंत्र है। बाकी मैं मेरे गुरु के वचन को नहीं त्यागूंगी।

मैं पा परउँ कहइ जगदंबा।

तुम्ह गृह गवनहु भयउ बिलंबा।।

भवानी ने कहा, बाबा, मैं तुम्हारे पैर में पड़ती हूं। आप घर जाइए, विलम्ब हो रहा है। आप जाइए, पधारिये। मैं मेरे गुरु वचन को छोड़नेवाली नहीं।

देखि प्रेमु बोले मुनि ग्यानी।

जय जय जगदंबिके भवानी।।

पार्वती की निष्ठा और प्रेम सुनकर सप्तऋषि बोले, तेरी जय हो माँ, जय हो, जय हो! हे भवानी, तुम्हारी जय हो। हम तो कसौटी कर रहे थे बेटा!

तुम्ह माया भगवान सिव सकल जगत पितु मातु।

नाइ चरन सिर मुनि चले पुनि पुनि हरषत गातु।।

हे कन्या, तू तो माया साक्षात् विद्या माया हो और शिव साक्षात् भगवान। और आज अभी तो हम तुम्हारी कसौटी कर रहे थे इसलिए तुम्हें कन्याकुमारी, बेटी कहते हैं लेकिन हे माँ, तू तो जगत की माता-पिता हो। तुम धन्य हो। वचन बोलते-बोलते सप्तऋषि प्रसन्न गात्र से वहां से विदा ले रहे हैं। हिमाचल को बात कही, आपकी बेटी की शरणागति अद्‌भुत है। परीक्षा में पास हुई है। और फिर सप्तऋषि शिव के पास गए और वहां जाकर उमा की कथा सुनाने लगे। भवानी का अपने प्रति अपार, अटूट, विशुद्ध प्रेम देखकर भगवान शिव मग्न हो गए, तन्मय हो गए और सप्तऋषि अपने भवन की ओर चल दिए। अपने मन को स्थिर करके सुजन महादेव परमात्मा रघुनाथजी का ध्यान करने लगे। मन स्थिर हुआ। शिव ध्यानस्थ हो गए। भवानी के प्रेम की बात सुनकर शिवजी पहले मग्न हो गए। फिर क्या किया? मन स्थिर किया और ध्यान रघुनाथ का करने लगे। किसी के प्रेम की इतनी तन्मयता होने के बाद अधिकतर जिसके प्रेम के बारे में बात सुनी हो न उसका ही ध्यान लगता है। और ध्यान देना, सच्चा स्नेह और सच्चा प्रेम आदमी को विशेष जागृति प्रदान कर दे।

कथा प्रसंग बदलते हुए शिव पार्वती को कहते हैं देवी, विश्वामित्र महाराज अयोध्या आये। अपने यज्ञरक्षा के लिए पुत्र की मांग करते हैं। शुरू में दशरथ की ममता थोड़ा अविवेक कर देती है। लेकिन जब वशिष्ठजी ने कह दिया कि राजन्, इस विश्वरूप राम को कब तक अपने आंगन में गिरफ्तार कर रखोगे? राम तो विश्व का है। महाराज दशरथजी राजी हो जाते हैं। राम और लक्ष्मण माता के आशीर्वाद लेकर मुनिकार्य के लिए विश्वामित्र के साथ पदयात्रा का आरम्भ करते हैं। रास्ते में ताड़का मिली। विश्वामित्र के संकेत पर राघव ने एक ही बाण से ताड़का को निर्वाण दिया। दुर्विचार, दुष्ट प्रवृत्ति जहां से प्रकट होती थी, इस भूमिका को रामजी ने पहले निर्वाण कर दिया। दूसरे दिन यज्ञ का आरम्भ होता है। मारीच-सुबाहु विघ्न करने के लिए आये। बिना फ़ने का बाण मारकर मारीच को शत जोजन सागर तट लंका की ओर फेंक दिया। सुबाहु को अग्नि के बाण से जलाकर के भस्म कर दिया। आसुरी वृत्ति का निर्वाण करके भगवान ने ऋषि का अनुष्ठान पूरा किया। एक दिन सुबह विश्वामित्रजी ने कहा, मेरा यज्ञ तो आपने पूरा किया ही। दो यज्ञ ओर बाकी हैं। एक रास्ते में यज्ञ पड़ेगा और तीसरा यज्ञ मिथिला में धनुषयज्ञ। धनुषयज्ञ की बात सुनते ही भगवान हर्षित होकर चल पड़े।

गोस्वामीजी वो प्रसंग के पास हमें पहुंचाते हैं जो बहुत महत्त्व का प्रसंग है, अहिल्या का प्रकरण। पदयात्रा करते राम ने देखा कि कोई शिलादेह, कोई चट्टान की तरह अबोल, अचेत बिलकुल हलचल नहीं, कौन पड़ा है ये? ठाकुर के पैर रुक गए और विश्वामित्र से जिज्ञासा की कि महाराज, ये किसका आश्रम है? ये कौन पड़ा है, ये अबला कौन है? और विश्वामित्रजी राम को परिचय कराते हुए बोले, हे राघव, ये गौतम नारी अहिल्याजी हैं। श्रापवश हुई हैं। बहुत बड़ा बचाव कर रहे हैं। एक पतित, जो गिरी हुई है, 'मानस' की दृष्टि से वो उपेक्षित महिला के पक्ष में मेरे देश का एक महामुनि खड़ा हुआ। तो एक उपेक्षित महिला के पक्ष में खड़े रहकर महामुनि ने कहा, ये आपसे और कुछ नहीं चाहती। आपके चरणरज का दान करो। रजमात्र कृपा कर दो राघव। और परमात्मा के चरण की रजमात्र कृपा हुई और गोस्वामीजी जो चाहते थे वो ही क्रान्तिकारी घटना निर्मित हुई।

परसत पद पावन सोकनसावन प्रगट भई तपपुंज सही।

देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होइ कर जोरि रही।।

बहुत बड़ी क्रांति हो रही है। रामजन्म के समय जो बधाई न गाई जाये, ऐसे प्रसंग पर बधाई गानी चाहिए। क्योंकि भये प्रगट कृपाला जरूर, लेकिन आज एक अबला प्रकट हुइ है पवित्र होकर के। तुलसी क्या शब्द लिखते हैं, 'प्रगट भई तपपुंज सही।' मानो तपस्या प्रगट हो गई है। सोचने लगी अहिल्या जिस चरण से गंगा निकली, शिव के सिर पर गई, वहीं से निकली। वो मूल स्थान भगवान का चरण आज मेरे सिर पर पड़ा है।

'रामायण' को उपर-उपर से देखते बहुत प्रश्न लोगों ने उठायें है। न तुलसी के हृदय की किसी ने सुनी, न मेरे राम का स्वभाव किसी ने जानने की कोशिश की। इसलिए ऊंगलियां उठी। तो कहने का मतलब भगवान राम अहिल्या पर चरणकृपा करते हैं। प्रकट हो गई। आंखों से अश्रुधारा बही। अत्यंत मनभावन वरदान प्राप्त किया और पतिलोक की ओर गति कर गई। और मुझे पूछो तो मैं तो ये कहूंगा कि अब गौतम अहिल्या के पास आने की हिम्मत नहीं कर सकता। यस, कौन मुंह लेके गौतम आये? और इंद्र की तो ताकत ही नहीं कि वो आ सके! आश्रम के अगल-बगल में अपने गंदे पैर रख सके। लेकिन गौतम भी नहीं आ सकता। एक ऋषि शर्मिंदा हो गया तब मेरे देश की एक अबला को लगा कि मेरा पति, चलो जिस प्रकार भी निर्णय हुआ हो वो शर्मिंदा रहे ये ठीक नहीं। मैं सामने से जाऊं और गई गौतम के पास। और उसके बाद तो मुझे दिखता है, गौतम पत्थर की तरह बैठा रहा और अहिल्या उसकी आरती उतारती रही साहब! घटना घट गई। सब शांत हो गया। समाधि में बैठ गया मानो। क्योंकि उसको लगा कि अब बोलने जैसा कुछ बचा नहीं है! ये प्रसंग अद्‌भुत है। इसलिए रामजन्म की बधाई हो, रामप्राकट्य की बधाई हो। और आज संक्रांति के दिन अहिल्या के प्राकट्य की बधाई हो, बधाई हो, बधाई हो।

शिव का कोई कुल नहीं। राम का रघुकुल; कृष्ण का यदुकुल; किसी का सौमवंश; किसीका सूर्यवंश। 'सुरकुल' शब्द भी है, देवताओं का कुल; दानव कुल। तो हम सबका कुल होता है, शिव का कोई कुल नहीं। जो मूल तत्त्व है अकुल, उसका कोई कुल नहीं। हमारे यहां शब्द आया है 'गुरुकुल'; ये स्थानविशेष नाम है। तो ये स्थान के यहां गुरु बैठते हैं, यहां छात्र सीखते हैं, उस स्थान को हमने 'गुरुकुल' शब्द दे दिया है हमारी परम्परा में। 'ऋषिकुल' भी शब्द दे दिया, 'मुनिकुल' भी शब्द दे दिया। एक शब्द 'साधुकुल' भी आता है। साधुओं का भी कुल क्या? ये तो एक व्यवस्था खातर नाम है बाकी साधुओं का क्या कुल? साधु सार्वभौम तत्त्व होता है, उनका कोई कुल नहीं होता।

संशय, शरणागति और समाधान माँ कन्याकुमारी के जीवन के तीन पड़ाव है

नौ दिवसीय रामकथा 'मानस-कन्याकुमारी' जिसका आज विराम का दिन है। पुनः एक बार परम्बा के चरणों में प्रणाम करते हुए, स्वामीजी की युवा चेतना को भी प्रणाम करते हुए संत प्रवर को भी प्रणाम करते हुए, कथा में उपस्थित आप सभी को मेरा प्रणाम। आज की कथा समय परिवर्तन करना पड़ा विशेष कारण के लिए। मुझे कोई जल्दी नहीं थी लेकिन कल जब मैं कथा पूर्ण करके फिर मौन हो गया तब मुझे मेसेज मिला कि जिस निम्बार्कीय परम्परा से, प्रवाही परम्परा से, हम हैं वो निम्बार्क पीठ के जगद्गुरु परम पूज्य श्रीजी महाराज निर्वाण को प्राप्त कर गए। इसलिए मुझे फिर वहीं जाना जरूरी रहा। यद्यपि आप जानते हैं कि मैं कोई परम्परा से इन रूप में आबद्ध नहीं हूं लेकिन फिर भी एक जो प्रवाही गंगधारा है उसका निर्वहन करना भी हमारा कर्तव्य है। इस परम्परा के परम आचार्य जगद्गुरु श्रीजी महाराज हमारे बीच नहीं है, तो मैं मेरी व्यासपीठ से मेरे बहुत बड़ी संख्या के श्रोताओं को साथ में लेकर मैं हमारे जगद्गुरु निम्बार्क भगवान श्रीजी महाराज के निर्वाण को प्रणाम करता हूं और व्यासपीठ से मेरी श्रद्धांजलि समर्पित करता हूं।

रोज की तरह कल सांयकाल भी एक अच्छा कार्यक्रम यहां पेश किया गया। सुब्रह्मण्यम् परिवार ने एक अच्छा कार्यक्रम पेश किया। और प्रतिदिन की भांति हमारे परम स्नेही पाठकजी का संक्षिप्त सात्त्विक संचालन और फिर बहन भारती ने कथा का सार अंग्रेजी में प्रस्तुत किया। नौ दिन के लिए हमारे परम स्नेही ब्रजवासी की सेवा के लिए बहुत-बहुत साधुवाद। भारती को भी बहुत-बहुत भगवान प्रसन्न रखे। और यजमान परिवार रमाभैया और उसका पूरा परिवार भगवत्कथा प्रेमयज्ञ होता रहे उसके लिए सदैव उसी के बारे में ही सोचते रहते हैं। मैं मेरी प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। स्वयंसेवकगण जो इस प्रेमयज्ञ में अपनी-अपनी सेवा देते हैं सभी को भी मैं याद करूं। यहां का प्रशासन, विवेकानंद केन्द्र के सभी बुज़ुर्ग और युवागण, मंदिर के सब पूजनीय पूजारीगण और छोटे-बड़े सभी इस प्रेमयज्ञ में जो आहुतियां डाली है। इसके लिए मेरी व्यासपीठ प्रसन्नता व्यक्त करती है। सबको बहुत-बहुत साधुवाद।

कथा तो एक अर्थ में कहें तो बहुत लम्बी पड़ी है लेकिन हमारे पास जीने का अवसर भी बहुत है। करते रहेंगे, करते रहेंगे। लेकिन संक्षेप में थोड़ा विहंगावलोकन कर लिया जाये। उसका थोड़ा तात्त्विक दर्शन करते-करते हम आज इस नौ दिवसीय रामकथा को विराम देंगे। 'मानस-कन्याकुमारी' का उपसंहारक सूत्र उसको मैं बाद में लूंगा। पहले थोड़ा कथा का क्रम संक्षिप्त रूप में निर्वाह कर लूं।

अहिल्या उद्धार की कुछ चर्चा कल व्यासपीठ ने की और फिर भगवान वहीं से आगे बढ़ते हैं। गंगास्नान करते हैं। गंगा की कथा भी सुनते हैं। और ये तुलसी का जोड़ देखो। भगवान की इस यज्ञयात्रा में पहले एक पतित उद्धार की कथा कही, फिर पतित पावनी गंगा की कथा सुनी। राम गंगा के तट पर पहुंचते हैं। गंगा अवतरण की कथा सुनते हैं और उसके बाद सीधे भगवान जनकपुर पहुंचते हैं। महाराज मिथिलापति ने 'सुंदरसदन' में प्रभु को ठहराया। सांयकाल को नगर दर्शन किया। दूसरे दिन सुबह पुष्पवाटिका में जानकी और राम का प्रथम मिलन होता है। अभिन्न है फिर भी लीलाक्षेत्र में दोनों एक दूसरे में समर्पित हो जाते हैं। गौरीपूजा करके सीता रामप्राप्ति का वरदान प्राप्त कर लेती है। उसके बाद दूसरे दिन धनुष भंग की कथा आती है। भगवान राम गजपंकजनाल की तरह धनुष भंग करते हैं। सियाजू माला पहनाती है। फिर बीच में एक विघ्न आ जाता है परशुराम। और परशुराम भी राम के प्रभाव को जानने के बाद अवकाश प्राप्त कर लेते हैं। उसके बाद सीता-राम का यानी चारों भाइयों का चारों मैथिलि कन्या के साथ ब्याह हो जाता है। और फिर दशरथजी सबको लेकर अयोध्या आते हैं। कुछ दिनों के बाद विश्वामित्र महाराज अवधपति से विदा ले लेते हैं और वहां तुलसीजी 'बालकांड' को विराम दे देते हैं।

'अयोध्याकांड' में राम का वनवास हुआ। राम वनवास होता है दो वचन के कारण। महाराज मूर्छित होते हैं। राम-लखन-जानकी जाते हैं सुमंत्र के रथ में। तमसा के तट पर निवास करते हैं। प्रजाजनों को रोये रखकर भगवान आगे निकल जाते हैं। शृंगबेरपुर पहुंच जाते हैं और सुबह अवधवासी वियोगी लोग रो-रोकर लौट जाते हैं अवध। दूसरे दिन सुमंत्र को विदा दी। केवट से नौका की मांग की। चरण धोये। गंगापार हुए। प्रभु फिर एक रात्रि मुकाम गंगा तट पर करते हैं। दूसरे दिन शिवपूजन करके भगवान पदयात्रा का आरम्भ करते भरद्वाज ऋषि के आश्रम में आये। हमें मार्गदर्शन देने के लिए भगवान राम ने भरद्वाजजी से पूछा कि हमें रास्ता दिखाइए, कौन रास्ते हम चलें? और भरद्वाज ने कहा कि मैं निर्णय नहीं कर पाऊंगा। हां, मार्गदर्शन दे दूं। बाकी कहां पहुंचना, कहां रहना ये मैं नहीं कह सकता। चार शिष्य साथ में गए। मार्गदर्शन किया। बीच में गुहराज लौट आया। भगवान वाल्मीकि के आश्रम में आये। राम ने पूछा, हम कहां रहें? वाल्मीकि ने चित्रकूट स्थान का निर्देश किया। और चित्रकूट में प्रभु छा गये।

यहां सुमंत्र लौटे। तीनों में से कोई नहीं लौटा, ये पक्की खबर सुनने के बाद महाराज दशरथजी का प्राणत्याग। अवध अनाथ। भरतजी को बुलाया गया। दशरथजी की उत्तरक्रिया हुई। सभा मिली। आखिर में निर्णय हुआ कि भरत सत्ता का आदमी नहीं, सत् का आदमी है; पद का नहीं, पादुका का आदमी है। हम सब चित्रकूट जाएं। पूरी अवध चित्रकूट की यात्रा करती है। बीच के विघ्न हटाते चित्रकूट पहुंचते हैं। जनकराज भी जाते हैं। दो नगर चित्रकूट में बस जाते हैं और बड़ी-बड़ी सभायें हुई और आखिरी में प्रेम के कारण कोई किसी पर दबाव नहीं डाल पा रहे थे। आखिर में भगवान राम ने भरत पर छोड़ा कि भरत जो कहे वो मुझे करना है। भरतजी कहते हैं, 'जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई।' मेरा ठाकुर जिसमें प्रसन्न वो मैं करूं। ये प्रेम का शुद्ध रूप है। आखिरी समर्पण भरत ने कर दिया। कह दिया, ठीक है महाराज, आपकी जिसमें प्रसन्नता लेकिन एक बिनती करता हूं, मैं चित्रकूट के तीर्थों का दर्शन करना चाहता हूं। फिर सबकी विदा की बेला थी और भरतजी सोचते हैं कि मैं जाऊं तो सही लेकिन मुझे कोई आधार चाहिए। प्रभु कृपा करके पादुका प्रदान करते हैं और शिरोधार्य करके पादुका लेकर भरतजी लौट जाते हैं। अयोध्या पहुंचे। पादुका स्थापित की। जनक गए। वशिष्ठजी की आज्ञा और माँ कौशल्या को प्रसन्न करके भरतजी नंदिग्राम निवास करने लगे।

'अरण्यकांड' में प्रभु की विशेष वनयात्रा है। परमात्मा की सुंदर शृंगारलीला है और उसके बाद प्रभु आगे बढ़ते हैं। अत्रि के आश्रम में आये। उसके बाद भगवान आगे बढ़े। शरभंग, सुतीक्ष्ण आदि संतों को मिलते हुए भगवान कुम्भज ऋषि के आश्रम में आये। वहां विचार-विमर्श हुआ और आसुरी वृत्तियों का कैसे निर्वाण किया जाये उसकी बातचीत हुई। भगवान कुम्भज ऋषि के आश्रम से आगे बढ़े। रास्ते में गीरधराज जटायु से मैत्री हुई और गोदावरी के निकट भगवान पंचवटी में निवास करने लगे। एक दिन

लक्ष्मण ने पांच प्रश्न पूछे। ठाकुरजी ने पांच प्रश्नों के उत्तर दिए। उसके बाद शूपर्णखा आई, दंडित हुई। शूपर्णखा ने खर-दूषण को उकसाया। भगवान के हाथ चौदह हजार का निर्वाण हुआ। शूपर्णखा रावण को उकसाती है। रावण योजना बनाकर के जानकी के अपहरण के लिए मारीच को लेकर आता है इससे पहले प्रभु ने योजना बना ली। ललित नरलीला की योजना में सीता को अग्नि में समाविष्ट होने का कह दिया। कोई मर्म नहीं जान पाया। बाद में सीता का अपहरण हुआ। जटायु ने शहीदी-कुर्बानी दी। रावण सीता को लेकर अशोक वाटिका में यत्नपूर्वक रखने लगा।

मृगवध करके प्रभु लौटे। जानकी विहीन कुटिया देखकर मानवलीला करते हुए प्रभु रोये। लखन और राम दोनों सीता अन्वेषण में निकल जाते हैं। जटायु मिले। पितृतुल्य आदर देकर जटायु की दिव्य गति हुई। उसके बाद भगवान पम्पा सरोवर आये। शबरी के आश्रम में होते हुए शबरी के पास नौ प्रकार की भक्ति की बात हुई। शबरी के आश्रम में भगवान ने भक्ति संवाद किया है और शबरी भगवान की गाईड बनी। भगवान शबरी से पूछते हैं कि अब मुझे बताओ, हम जानकी को खोज रहे हैं, हम कहां जाएं? तो शबरी गाईड करती हैं राम को। राम की गाईड शबरी है। भगवान को मार्गदर्शन भक्ति करा रही है। आप पम्पा सरोवर जाना; आप वहां जाना और वहां थोड़े आगे जाओगे तो आपको सुग्रीव से मैत्री होगी और सीता को, शांति को प्राप्त करने के लिए तो भक्ति मार्गदर्शन करती हैं। आप ऐसे-ऐसे जाओ। तो प्रभु का मार्गदर्शन शबरीजी ने किया। लेकिन शबरी कहती है कि महाराज, भक्ति कायम जवान रहनी चाहिए। भविष्य में कोई मेरे बारे में कहे कि भक्ति प्रौढ़ हो गई थी, फिर बीमार होकर मरी। जहां से कभी लौटना ना पड़े ऐसी योग अग्नि में मैं जाऊं। जहां से लौटना न पड़े वहां शबरी पहुंच गई। भगवान राम पम्पासरोवर आये। देवर्षि नारद आये। गुणगान गाये। चर्चाएं हुई। संतों के लक्षण के बारे में पूछा। भगवान ने संतों के लक्षण गिनाये।

'किष्किंधाकांड' में हनुमान जी के माध्यम से सुग्रीव जैसे विषयी को राम की प्राप्ति हुई। बालि निर्वाण, सुग्रीव को राज्य, अंगद को युवराजपद प्राप्त हुआ। प्रभु ने प्रवर्षण पर्वत पर चातुर्मास किया। जीव स्वभाव के कारण सुग्रीव भगवतकार्य भूल गया। भोगों में लिप्त हो गया। तब प्रभु ने लक्ष्मण को कहा, जरा जागृत करो इस आदमी को। लक्ष्मणजी जाते हैं भय दिखाने के लिए। सुग्रीव को इससे पहले हनुमानजी ही जागृत कर देते हैं। भगवान के पास सुग्रीव को ले आये। सुग्रीव कहता है महाराज, मैं आपका कार्य भूल गया क्योंकि आपकी माया बहुत प्रबल है। आप कृपा करें तो ही बच सकते हैं।

योजना बनी जानकी खोज की। दसों दिशाओं में दूत भेजे गए, बंदर भेजे गए। अंगद नायक है टुकड़ी का; जामवंतजी मार्गदर्शक है; वयोवृद्ध सलाहकार है। हनुमानजी इस टुकड़ी का सदस्य है। वैसे एक ख़ास टुकड़ी को दक्षिण में भेजा है। क्योंकि भक्ति का जन्म ही दक्षिण में हुआ है जो भागवत' के न्याय से है। सबसे पीछे मेरे हनुमानजी महाराजवाली टुकड़ी जाती है। जंगल में हनुमानजी मार्गदर्शन बने। पृथ्वी में एक गुफ़ा देखी। थोड़ा ऊपर जाकर देखा। एक सुंदर मंदिर; एक तपस्विनी वहां बैठी है। तपस्विनी ने स्वागत किया। तपस्विनी ने भी मार्गदर्शन किया, आंखें बंद करके आप बैठो। लेकिन बंदरों ने आंख खोल दी तो सागर के तट पर आ गए! वहां सम्पाति मिला। जामवंत ने हनुमानजी को एकदम आह्वान किया कि रामकार्य के लिए आपका जीवन है। सीता अशोक वाटिका में है। शत जोजन सागर लांघे वो कर सकता है। श्री हुमानजी पर्वताकार होते हैं।

'किष्किंधाकांड' पूरा होता है। 'सुन्दरकांड' आरम्भ होता है। श्री हनुमानजी महाराज विघ्नों को पार करते हुए लंका में प्रवेश करते हैं। और आखिर में माँ के सामने प्रकट होते हैं। बीच में रावण आ गया, आदि-आदि। इंद्रजित आया। हनुमानजी को बांधकर लंका के दरबार में ले गया। आखिर में हनुमानजी को मृत्युदंड़ की बात हुई। विभीषण ने कहा, नीति मना करती है, दूत को मारा न जाए। ओर कुछ सजा दी जाये। फिर पूंछ जलाने की बात आई। पूंछ पर आग लगाई। उलट-पुलट लंका को जलाई। और उसके बाद सागर में स्नान करके माँ के पास लघुरूप में आये। माँ को कहा कि जैसे प्रभु ने निशानी दी थी आप मुझे कुछ निशानी दें। जानकी ने चूड़ामणि उतार कर दिया। माँ को ढाढस देकर हनुमानजी फिर जाते समय एक बहुत बड़ी गर्जना करके निकले सागर के उस पार। सुग्रीव के पास गए। सब मिलकर राम के पास गए। जामवंतजी ने रामजी के सामने हनुमंत कथा सुनाई। हनुमान को भगवान ने गले लगाया। आनंद हुआ। परमात्मा की सेना ने प्रस्थान किया। सागर के तट पर सब ने एक डेरा डाला। यहां विभीषण रावण को समझाने गया। चरण प्रहार हुआ। विभीषण राम

की शरण आया। प्रभु ने शरणागत को आश्रय दिया। तीन दिन भगवान समुद्र के तट पर रास्ता मांगने के लिए बैठे हैं। तीन दिन तक सागर ने कोई जवाब नहीं दिया तब धनुष-बाण उठाया। ब्राह्मण का रूप लेकर मणियों का थाल लेकर राम की शरण में समुद्र आया। सेतुबंध का प्रस्ताव रखा। भगवान को बात अच्छी लगी जोड़ने की।

'सुन्दरकांड' के बाद 'लंकाकांड' का आरम्भ हुआ। सेतुबंध हो गया। रामेश्वर भगवान की स्थापना की। भगवान की सेना लंका में प्रवेश। सुबेल पर प्रभु का मुकाम। यहां रावण आया है मनोरंजन पाने। प्रभु ने महारस भंग किया। दूसरे दिन रावण की सभा में संधि का प्रस्ताव लेकर राम की ओर से राजदूत अंगद गया। मंत्रणा विफल। युद्ध अनिवार्य। धमासाण युद्ध। एक के बाद एक वीरगति प्राप्त करने लगे सब। आखिर में रावण की नाभि में तीर। 'राम' कहकर पृथ्वी पर गिरा। रावण का तेज प्रभु के आनन में समा गया। मंदोदरी ने स्तुति की। रावण का संस्कार हुआ। विभीषण का राज तिलक हुआ। हनुमानजी महाराज जानकीजी को खबर देने गए। जानकी अग्नि से बाहर आ गई मूल रूप में और भगवान के पास सियाजू आई। और बाद में भगवान ने कहा, अब विलम्ब न करें; आयोध्या जाए। पुष्पक तैयार हुआ। अपने निज गणों को साथ में लेकर भगवान अवध की यात्रा का आरम्भ करते हैं। सेतुबंध का दर्शन करवाया। रामेश्वर का दर्शन करवाया। अन्य मुनिगणों से आश्रमों की मुलाकात लेते हुए प्रभु शृंगबेरपुर पहुंचे। इससे पहले हनुमानजी को अवध भेज दिया। हनुमान आयोध्या गए खबर देने। प्रभु शृंगबेरपुर में उतरे। वंचित लोग जो पतित, दलित लोग सबसे मिले और केवट आदि को विमान में ले लिया।

'उत्तरकांड' में भरत की विरहव्यथा का वर्णन। हनुमानजी बचाने के लिए आ गए और अपना परिचय दिया। मैं पवनपुत्र हनुमान हूं, राम का दूत हूं। सकुशल प्रभु पधार रहे हैं। पूरी आयोध्या आनंद में डूब गई। हनुमानजी ने रामजी को खबर की। प्रभु जल्दी उड़ान भरते हैं। सरजू तट पर विमान उतरा। विमान से ठाकुर नीचे आये। बंदर, भालू, असुर, विभीषण आदि सब मनुष्य का रूप लेकर विमान से बाहर आये। गुरुदेव को दंडवत्। भरत और राम भेंटे। भगवान ने अनेक रूप लेकर सभी समाज को जड़-चेतन सभी को आत्मआलिंगन दिया। सबका साक्षात्कार पूरा किया। भगवान माँ कैकेयी की लज्जा दूर करने के लिए पहले माँ के पास गए। सुमित्रा को मिले। कौशल्या को मिले। जानकी को देखकर माताओं की आंखें डबडबा गई। सबको स्नान करवाया गया। भगवान वशिष्ठजी ने ब्राह्मणों को पूछा, आज ही राजतिलक कर दें? बोले, हां बाबा, अब देर न करें। दिव्य सिंहासन मांगा और भगवान राम को आदेश हुआ कि राघव, आप अयोध्या की गादी पर बैठकर

प्रेमराज्य की स्थापना करो। राम-जानकी विराजमान हुए और वशिष्ठजी ने विश्व को रामराज्य देते हुए राजतिलक किया।

रामराज्य स्थापित हुआ। माताओं ने आरती की। चारों वेद पधारे। वेद गायन हुआ। उसके बाद धूर्जटि सदा शिव स्वयं कैलास से पधारे। भगवान की स्तुति करके राम गुणगान गाकर हर्षित होकर कैलास गए। भगवान ने अपने साथ आये मित्रगणों को निवास दिया। दिन बीतते गए। दिव्य रामराज्य की स्थापना हुई। छः मास बीते। हनुमानजी को छोड़कर सभी मित्रों को अपने-अपने कर्तव्य में प्रभु ने भेज दिए। प्रभु की नरलीला है ये। समयमर्यादा पूरी हुई। जानकीजी ने दो पुत्रों को जन्म दिया। वेद-पुराण जिसकी चर्चा करते हैं वो लव-कुश। वैसे ही तीनो भाईयों के वहां दो-दो पुत्र हुए। मैं बार-बार कह चुका हूं। जिसमें अपवाद है, दुर्वाद है, थोड़ा विवाद जुड़ गया है ऐसी कथा तुलसी संवादी सद्ग्रन्थ में लाना नहीं चाहते हैं। इसलिए सगर्भा स्थिति में सीता का दूसरी बार का अवध त्याग, ये कथा तुलसी ने छोड़ दी है। रघुवंश के वारिस का नाम दिखाकर के कथा को विराम दे दिया। फिर तो कागभुशुंडिजी का जीवन चरित्र है। गरुड़जी के सात प्रश्न और फिर कथा को कागभुशुंडि विराम देते हैं। याज्ञवल्क्य ने पूरा किया कि नहीं, खबर नहीं। और भगवान शिव पार्वती के सामने कथा को विराम कर देते हैं। आखिर में तुलसी कथा को अपने मन को बोध देते हुए, संतों को सुनाते हुए विराम करें वो विराम की ओर हम जायें इससे पूर्व-

सब लच्छन संपन्न कुमारी।
होइहि संतत पियहि पिआरी।।

'मानस-कन्याकुमारी' का कुछ संवादी दर्शन जो हम साथ मिलकर कर रहे हैं। कन्याकुमारी माने पार्वती के जीवन के तीन पड़ाव मालूम होते हैं। जब सती थी तो उसके जीवन का एक पड़ाव, एक बहुत मजबूत पड़ाव व्यासपीठ की दृष्टि से रहा और वो पड़ाव तो संशय-संदेह जो उसने राम पर किया और परिणामस्वरूप वो पूरा जीवन उसका बीत गया, गवां दिया चलो। तो सती के रूप में उसका एक पड़ाव है संशय। पार्वती के रूप में दो पड़ाव है। एक है शरणागति। क्रम थोड़ा बदलता है। संशय सती के रूप में; शरणागति कन्याकुमारी के रूप में 'जन्म कोटि लगि रगर हमारी।' शरणागति वो और समाधान शिववामा के रूप में भवानी बनकर जब प्रश्न करती है कि राम तत्त्व क्या है? और समाधान मिला और वो कहती हैं, 'मैं कृतकृत्य भइउँ अब तव प्रसाद बिस्वेस।' जैसे एक क्रम तो जो व्यासपीठ का है संशय, समाधान और शरणागति। माँ कन्याकुमारी के जीवन के भी ये तीन पड़ाव हैं।

सप्तऋषि जयजयकार करते चले गए कल तक की जो बातें थी। उसके बाद भगवान शिव के पास देवगण गए, स्तुति की। शिवजी जागे और ये सब बातें। कामदेव आया और सभी देवताओं ने ये सब किया। शिव को ब्याह के लिए राजी कर दिया। उसके बाद फिर अवसर जानकर सप्तऋषि आये। पार्वती तो अब चली गई है बाप के घर में। लेकिन सप्तऋषि पहले मिले पार्वती को। हिमालय को पहले नहीं मिले। फिर सप्तऋषि को हुआ कि एक बार ओर कसौटी कर ली जाये कि भवानी अडग है अपनी पंचनिष्ठा में कि कहीं हिल रही है? आखिरी संवाद साध लें सप्तऋषि आये वहां से-

अवसरु जानि सप्तरिषि आए।
तुरतहिं बिधि गिरिभवन पठाए।।
प्रथम गए जहं रहीं भवानी।
बोले मधुर बचन छल सानी।।

आये, पहले भवानी को मिलने गए और वचन कैसे बोले? ऐसे मधुर बोले, आनंद आये। लेकिन तुलसी कहते हैं, कपट में सने हुए वचन बोले। छल कर रहे हैं। अभी कसौटी चालू है। अभी वो उसको हिलाने की कोशिश कर रहे हैं, हे कन्या, हम कहकर थक गए लेकिन तुने हमारी न सुनी और नारद के वचन नहीं छोडूं, नहीं छोडूं! ले क्या फायदा? अब तुम्हारी प्रतिज्ञा झूठ हो गई। क्योंकि शंकर ने काम को जला दिया। अब शादी का क्या कारण रहा? तुम कहती है, मैं उसी को ब्याहूं, बस वही मेरा कायमी पति है। और अब क्या? शादी का जो देवता है, शादी का कुलदेवता है उसका नाम कामदेव है कामदेव को नकारा न जाये। उसका अपना स्थान है। अब वो काम ही नहीं रहा तो शादी का क्या मतलब है। वचन सुनकर मेरी भवानी कन्याकुमारी मुस्कुराई, आहाहा! महाराज, आप उचित कह रहे हैं। आप तो बड़े विज्ञानी है, अरे! जरा एक बार प्रयोग तो करके देखो कि महादेव कौन है? खाली सूत्र ही फेंके जा रहे हो! तुम्हारी जानकारी में आया कि शंकर ने काम को जला दिया। इसका मतलब है कि जिसकी आराधना मैं करती हूं क्या वो विकारवाला आदमी था? तुमने तो अभी जाना कि काम को जलाया। महाराज, मुझे तो पहले से खबर है कि

जिससे मुझे जुड़ना है वो तो सदा-सर्वदा निर्विकार है। क्या वो विकारवाला था? आगे-

हमारें जान सदा सिव जोगी।
अज अनवद्य अकाम अभोगी।।

हमारी जानकारी में तो शिव योगी है, अजन्मा है, अनिंद्य है, अनवद्य, कोई उसकी निंदा नहीं कर सकते। अकाम, मेरा महादेव अकाम है, निष्काम है। अभोगी है, भोगी नहीं है। निर्लोभी, अकामी, अविकार, अनवद्य, अज, योगी ये सब समझकर यदि मैंने शिव का भजन किया है; प्रीति सहित मन, कर्म, वचन से मैंने उसकी शरणागति की है तो मेरी अभिलाषा, मेरी बात पूरी करेगा। सप्तऋषियों ने कहा, कौन पूरी करेगा? बोली, दूसरा पूरी करे वो मुझे मंजूर नहीं है। करे तो मेरा ईश शंकर ही पूरी करे। शरणागत की मांग भी दूसरे से नहीं हो सकती। कौन करे? ईश माने यहां शंकर। कृपानिधि माने करुणावतार। जो ईश है विश्व का। मेरी झोली भरे तो वो ही भरे। वो मेरी इच्छा पूरी करेंगे। आगे बोले-

तुम्ह जो कहा हर जारेउ मारा।
सोई अति बड़ अबिबेकु तुम्हारा।।

महाराज, माफ़ करियेगा, आप मेरे से बहुत बात कर चुके हैं। लेकिन महाराजजी, आप कहते हैं भगवान शिव ऐसे हैं तो मुझे तो लगता है, हे विज्ञानी मुनीश्वर! ये तुम्हारा सबसे बड़ा अविवेक है। आपको सत्य का अनुभव नहीं है। आगे बोले-

तात अनल कर सहज सुभाऊ।
हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ।।

आप वैज्ञानिक है, आप प्रयोग नहीं करते चलो! मैं प्रयोग बताऊंगी। आओ, में प्रयोग करूं। हे बाप! अग्नि का सहज स्वभाव है, बर्फ़ उसके पास जा ही नहीं सकता और यदि जाए तो प्रयोग सिद्ध हो जायेगा, अग्नि के पास हिम गया तो उसका नाश ही होगा। जैसे अग्नि के पास बर्फ़ जाये नाश ही उसका परिणाम होगा वैसे मेरे महादेव के पास काम जा ही नहीं सकता। महेश की बात भी ऐसी है। इति सिद्धम् कर रही है। प्रयोग करके दिखा रही है। आखिरी कसौटी में मेरी पार्वती फुल पास हुई। ए ग्रेड ले लिया। पहले नंबर पास हुई। और पार्वती के वचन सुनकर सप्तऋषि प्रसन्न हो गए और वहीं से वो धन्यवाद देते हुए गए हिमाचल पास। और कहा कि महाराज, तैयारी करो अब बेटी का ब्याह करा दो। और फिर विधाता पत्र तैयार करते हैं शिव ब्याह का। फिर सप्तऋषि को ये पत्र लेकर भेजा है और शिवविवाह की तिथि निश्चित हुई है और फिर बाबा ब्याहे हैं।

तो 'मानस-कन्याकुमारी' का ये आखिरी पहलू था। इसमें आखिरी कसौटी में भी माँ पास हो गई। सती में था संशय। कन्याकुमारी में थी शरणागति और शिवांगी के रूप में शिव अंक में बैठनेवाली के रूप में पूरा समाधान था क्योंकि 'बाम भाग हर आसनु दीन्हा।।' तो वाम भाग में बैठने वाली ये समाधान रूप है। कन्यावाली शरणागति रूप है। सतीवाला रूप संशयवाला रूप है। तीनों पड़ाव से कन्याकुमारी गुजरी है, पसार हुई है। तो माँ कन्याकुमारी का ये रूप आखिर में।

कल का एक प्रश्न किसी ने मुझे पूछा, 'बापू, कन्याकुमारी की चर्चा बहुत भायी, लेकिन ऐसी शरणागति प्राप्त करने के लिए हम जैसे मूढ़ साधकों को आप जाते पहले कुछ उपाय बताके जाएं।' मूढ़ साधकों को? साधक मूढ़ नहीं होता। विषयी मूढ़ होता है। ये तो मेरे मूंह के शब्द आपने छीन लिए हैं! मैं आपको साधक भाई-बहन कहता हूं। मान मत लेना। साधक मूढ़ नहीं होता। विषयी बिलकुल सोया है। साधक करीब-करीब पौना भाग जागा है लेकिन पा भाग सोया है। सिद्ध वो है जो पूरा जाग गया है। लेकिन सिद्धों को भी कभी-कभी झोंका आ जाता है! जिसमें निरंतर जागना हो चुका है ये शुद्ध है। तो साधक मूढ़ नहीं

कन्याकुमारी माने पार्वती के जीवन के तीन पड़ाव हैं। जब सती थी तो उसके जीवन का एक पड़ाव संशय-संदेह जो उसने राम पर किया और परिणामस्वरूप वो पूरा जीवन उसका बीत गया, गवां दिया चलो। तो सती के रूप में उसका एक पड़ाव है संशय। पार्वती के रूप में दो पड़ाव है। एक है शरणागति। संशय सती के रूप में; शरणागति कन्याकुमारी के रूप में 'जन्म कोटि लगि रगर हमारी।' शरणागति वो। और समाधान शिववामा के रूप में भवानी बनकर जब प्रश्न करती है कि रामतत्त्व क्या है? और समाधान मिला और वो कहती हैं, 'मैं कृतकृत्य भइउँ अब तव प्रसाद बिस्वेस।' माँ कन्याकुमारी के जीवन के भी ये तीन पड़ाव हैं।

होता। हम जैसे लोग विषयी मूढ़ होते हैं। तो भवानी की तरह डटे रहना है तो पांच वस्तु पकड़े रहिये। मैं मेरे ढंग से कहूंगा। आपने पूछा है तो जवाब दे रहा हूं। पहले भी मैंने ये बात किसी न किसी रूप में हमारे मंडपों में, साधुओं के मेले में, कथा में भी कहा होगा। आप निरंतर सुनते हैं तो आपको ख्याल आ ही जायेगा लेकिन फिर मुझे दोहराना भी अच्छा लगेगा कि यदि पांच वस्तु हम पकड़ लें तो फिर मुश्किल नहीं होगी, आनंद होगा। पांच वस्तु पकड़े रखना। एक, यदि आपकी रुचि है, आपको अच्छा लगता है, आपको इससे आनंद आता है तो किसी गुरु से प्राप्त मंत्र को निरंतर पकड़े रखिये अथवा तो किसी के वचन से ऐसे ही सुनते ही आपने गेंद केच कर ली हो। मंत्र पकड़े रखिये, यदि मंत्र में प्रीति आपकी हो तो।

दूसरा, माला, बेरखा अथवा तो कंठ में पहनने की माला। उसमें आपको रुचि हो, आपको उसमें आनंद आता हो तो दूसरा माला पकड़े रखना। माला एक अद्‌भुत वस्तु है। तीसरा, मेरी तरह मारुति को पकड़े रखना। ये सब सिंह राशि वाले हैं। 'साधो मुर्शिदनी सिंहराशि।' सुन्दर हमारे हरीश मीनाश्रु की ये कविता है। जो मुर्शिद होता है, जो गुरु, जो बुद्धपुरुष मुर्शिद है, 'म' और 'द' दोनों सिंह राशि के अक्षर हैं, आप जानते हैं। मंत्र पकड़े रखें; माला पकड़े रखें; तीसरा, मारुति को पकड़े रखें; हनुमंत आश्रय करें। चौथा, 'मानस' पकड़े रखे। ये 'मानस' छोटा नहीं है। 'गीता' पकड़े रखो। मेरे लिए वो भी 'मानस' है। उपनिषद पकड़े रखो वो भी 'मानस' है। 'कुरान' पकड़े रखो, मुझे कोई आपत्ति नहीं; 'मानस' है। 'बाइबल' पकड़े, रखो कोई आश्चर्य नहीं, दूसरों को लोभ और भय दिखाकर धर्मांतरण न करो तो! 'मानस' मत छोड़िये। माला मत छोड़ें यदि उसमें रुचि हो तो। मंत्र मत छोड़ें। मारुति को मत छोड़ें। और शिव हो, विष्णु हो, कृष्ण हो, यदि आप मूर्ति में प्रीति रखते हो तो कभी मूर्ति को मत त्यागो। मूर्ति, मंत्र, माला, 'मानस' और मारुति। आप पांच मकार पकड़े। पांच मकार की बात सिंह राशिवाला मोरारिबापू कहता है। मेरी भी तो सिंह राशि है यार! 'म' आया उसमें। मुझे इतना विवेक नहीं कि ऐसी बातें नहीं करनी चाहिए? लेकिन मैं आपको कितना निकट महसूस करता हूं! अर्थ उसका दूसरा कोई करे, करे, करे! फिर में परवाज़साहब को याद करूं सीपियां कौन कितनी ले गया वो समंदर देखा नहीं करते साहब!

मळी छे अमोने जगा मोतीओमां,
तमोने फ़क़त बुदबुदा ओळखे छे।

तो बाप! परिपूर्ण पंचनिष्ठा के लिए कुछ, इसमें रुचि हो तो। आपकी रुचि के अनुसार कोई ओर चीज में आपकी गति है तो मैं पुश करूंगा। मैं प्रसन्नता से धक्का दूंगा कि आप उसी में रहें। कोई चिंता नहीं। लेकिन ऐसा करने से मुझे लगता है, हमारी निष्ठा बहुत परिपक्व होगी, मजबूत होगी। 'मानस-कन्याकुमारी' से नौ दिन तक हमने उसकी चर्चा की है; संवाद किया है। परमात्मा करे; हमारा आंतरिक विकास और आंतरिक विश्राम विशेष हो ऐसी माँ के चरणों में प्रार्थना करता हूं।

एहिं कलिकाल न साधन दूजा।
जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा।।
रामहिं सुमिरिअ गाइअ रामहिं।
संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहिं।।

गोस्वामीजी कहते हैं, हे मन! जिसका नाम, जिसका गाना पतित पावन है, तू उसका नाम जप। एक शास्त्र का सार इतना छोटा-सा है, उसके नाम को भज।

पाइ न केहिं गति पतित पावन राम भजि सुनु सठ मना।
गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे घना।।

कितने-कितने अधम को इस नाम ने तारा है! और छोड़ो, ये पात्र तो शायद दूर भी पड़े। ये मेरा मन, हम दोनों तो निकट हैं ना! तो मेरी ओर देख। जिसकी रजमात्र कृपा से, लवलेश कृपा से मेरे जैसा मतिमंद आज परम विश्राम का अनुभव कर रहा है। राम समान मैं किसको कहूं?

चारों परम आचार्यों ने अपने-अपने श्रोता के सामने वाणी को विराम दिया। आज नौ दिन के लिए यहां जो वाणी मुखर हुई थी उसी को ये तलगाजरडी व्यासपीठ भी विराम देने की ओर अग्रसर है तब विशेष कुछ कहने का अवसर भी नहीं है, जरूर भी नहीं है। बहुत आनंद रहा। मैं फिर एक बार कथा में निमित्त बने परिवार के लिए हनुमानजी के चरणों में प्रार्थना करता हुआ मेरी भूरिशः प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। और इस नौ दिवसीय रामकथा का सुकृत जो इकट्ठा हुआ है, हम सब मिलकर के विवेकानंदजी को प्रणाम करते हुए, तिरुवल्लुवर कविवर को, संत कवि को प्रणाम करते हुए, यहां की समस्त चेतनाओं को प्रणाम करते हुए, हम सब मिलकर नौ दिवसीय रामकथा का सुकृत आइये, माँ कन्याकुमारी के चरणों में समर्पित कर दें, 'माँ, ये तेरे चरणों में हमारा समर्पण है; तू इसे कुबूल कर।'

मानस-मुशायरा

खुदा के वास्ते यूं बेरुखियों से काम न ले।
तड़प के कोई दामन को तेरा थाम न ले।
-साहिर लुधियानवी

तेरी आवाज़ से पत्थर भी पिघल सकता है।
तू वो लम्हा है जो सदियों को निगल सकता है।
मुझसे मत पूछ मेरी दिल की लगी का आलम,
मेरे अश्कों में तेरा हाथ भी जल सकता है।
-अंदाज़ देहलवी

घर से निकले हैं तो फिर घर नहीं देखा करते।
चलनेवाले कभी मुड़ कर नहीं देखा करते।
सीपियां कौन किनारे से उठाकर भागा,
ऐसी बातों को समंदर नहीं देखा करते।
-विजेन्द्रसिंह परवाज़

ये ज़ुबां से कही नहीं जाती।
ज़िन्दगी है कि जी नहीं जाती।।
एक आदत-सी बन गया है तू,
और आदत कभी नहीं जाती।
-दुष्यंत कुमार

मेरे राहबर मुझको गुमराह कर दे,
सुना है कि मंज़िल करीब आ रही है।
चरागों के बदले मकां जल रहे हैं,
नया है जमाना नई रोशनी है।
-खुमार बाराबंकवी

वो जहां भी रहेगा रोशनी लुटायेगा।
चरागों को कोई अपना मकां नहीं होता।
-वसीम बरेलवी

वो नहीं मेरा मगर उससे मुहब्बत है तो है।
ये अगर रस्मों रिवाजों से बगावत है तो है।
-दीप्ति मिश्र

हमें केवल कथावाचक नहीं रहना है, कथापाचक होना है

कैलास-गुरुकुल में आयोजित 'मानस-सम्मेलन' में मोरारिबापू का प्रसंगोचित उद्‌बोधन

सबसे पहले मेरी तलगाजरडीय गुणातीत श्रद्धा के कारण मैं जिस तिथि को तुलसी संवत्सर कहता हूं; ऐसे तुलसी संवत्सर के दिन कलिपावनावतार पूज्यपाद गोस्वामीजी के चरणारविंद में प्रणाम करता हुआ मैं धन्यता महसूस करता हूं। तत्पश्चात् जिस वंदनीय, पूजनीय अपने-अपने क्षेत्र के, तुलसी के शब्दो में कहूं तो-

भानुबंस भए भूप घनेरे।
अधिक एक तें एक बडेरें।।

ये इन सभी महत्पाद में प्रणाम करता हुआ, जिनकी हमने वाल्मीकि अवॉर्ड, व्यास अवॉर्ड, तुलसी अवॉर्ड के द्वारा वंदना की। क्योंकि देवता की पूजा या तो पुष्प लेकर या तो एक दीप प्रज्वलित करके पत्र-जल आदि से होती है। ये अवॉर्ड, ये कुछ है, वो तो केवल एक पुष्प का आश्रय लेना पड़ रहा है। बाकी आप सदा वंदनीय है, सदा वंदनीय रहेंगे। मैं आप सभी के चरणों में प्रणाम करता हूं। ये स्वाभाविक चयन हुआ कि इस तुलसीजयंती पर किन-किन महत् पुरुषों की, महत् व्यक्तित्व की पूजा की जाए तब करीब-करीब मैंने आप सबसे दूरभाष पर प्रार्थना की। सबसे पहले मैं याद करूं भानुपुरा। पीठाधीश्वर आचार्य चरण भगवान के चरणों में प्रणाम करूं। अपने संन्यास के नियमों के अनुसार आप चातुर्मास में हैं। शायद आप वहीं से आशीर्वाद भी दे रहे हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूं। उस पश्चात् जैसे हमारे पूजनीय प्रिय पुंडरिकजी भगवन्, जिसके हम ऋणी है, दादा के, अतुल कृष्ण गोस्वामीजी बाबा के। मैं दुनिया के चौक में कुबूल करता हूं कि हम ऊर्ध्वबाहु होकर 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण' ये जो बुलवाते हैं कथा में वो प्रेरणा मुझे दादाजी से प्राप्त हुई है। उसी परंपरा के आप तेजस्वी एक युवा, विद्वान, विचारक प्रवक्ता हैं। आपने हमारे अर्घ्य कुबूल किया और हम सबको कल सायंकाल एक महाअर्घ्य का दान दिया। आपके चरणों में मैं प्रणाम करता हूं। पूज्य भाईश्री, मैंने फोन किया कि आपकी हम वंदना करना चाहते हैं। बोले बापू, संकोचवश मैं क्या करूं? मैं लंडन में इन्हीं दिनों में कथा में व्यस्त हूं। तब मैंने प्रार्थना की कि

किसी प्रतिनिधि को आप भेज दीजियेगा और हमारा प्रणाम आप तक पहुंच जाये। आपने सहर्ष स्वीकृति दी और आपके प्रतिनिधि के रूप में पूज्य भाई शंकरभाई, हार्दिक और ये दोनों ऋषिकुमार आये। मैं भाईश्री को प्रणाम करता हूं; आपको भी प्रणाम करता हूं। अखंडानंदजी परंपरा के चाहक किशन का फोन आया मुझे 'परमार्थ निकेतन' ऋषिकेश से या कहीं से। आपने हमारी वंदना कुबूल की इसलिए आपके चरणों में मेरा प्रणाम! पूजनीय माताजी, मैं आपकी जन्मतिथि देख रहा था आपने जो मुझे किताब दी उसमें ३३ में शायद आपका जन्मदिन है; तो इतनी उम्र में आप कभी भी तुलसी की उपासना में लगे हैं और आप अपने ढंग से ये महत् कार्य कर रहे हैं। हमारे दादाजी भी पधारे। मैं दादाजी को प्रणाम करूं। और आपने आकर एक माँ के रूप में इस बालक की वंदना कुबूल की इसलिए मैं आपके चरणों में माँ, प्रणाम करता हूं। हमारे पूजनीय कृष्णानंदजी महाराजश्री, मैंने सुना; लक्ष्मणचरित्र पर आपका अधिकार है, किसी वक्ता ने कहा था, कभी अवसर मिला तो आधा घंटा, घंटा सुनेंगे। आप हर वक्त पधारते हैं और आपकी अगवानी में वो यहां तुलसीजयंती के अवसर पर ये संमेलन हुआ तब आपने अपनी जो पीड़ा व्यक्त की थी वो मैंरे लिए प्रेरणा बनी और हमें ये सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैं आप दोनों महानुभावों को प्रणाम करता हूं।

जगद्‌गुरु शंकर पंचदेव की पूजा की बात करते हैं सनातन धर्मावलंबियों के लिए तब वो कहते हैं कि सूर्य, शिव, दुर्गा, विष्णु, गणेश ये पांच देव जो हैं इसमें किसी की गणेश में निष्ठा होती है। हमारे कैलास पीठाधीश्वर ब्रह्मलीन स्वामी विद्यानंदगिरिजी महाराज बताते थे। आपका भी 'रामचरित मानस' के प्रति अद्‌भुत प्यार था। वो बताते थे कि जिसको गणेश में प्रीति हो वो गणेश को केन्द्र में रखते हैं और उपदेवों के रूप में विष्णु, दुर्गा, शिव की पूजा करते हैं। आप दुर्गा में प्रीति रखते हैं तो केन्द्र में दुर्गा को रखें बाकी के चार देव उपदेवता के रूप में रखें। जिसमें जिसकी निष्ठा है उसको केन्द्र में रखते हैं। 'मानस' जगत के, कथाजगत के मेरे इतने पूज्यचरण बुज़ुर्ग, युवा, माताएं, बहनें, बेटियों जैसी बहनें ये सब यहां आये हैं ये आप सबका सन्मान है। लेकिन गणेश को माननेवाला गणेश को केन्द्र में रखकर उपदेवताओं की पूजा करता है; दुर्गा को केन्द्र में रखकर अन्य देवताओं की पूजा करता है वैसे ये पांच की वंदना ये सब आपकी ही वंदना है। क्योंकि आप सब मेरी दृष्टि में है और अल्लाह करे मेरी दृष्टि में आप कायम रहे। आप सभी के प्रति मेरे हृदय में अपार आदर है। हमारे पूज्य स्वामीजी आये एक निमंत्रण पर। कितने व्यस्त रहते हैं! हमारे उमाशंकरजी भगवान आये। सबका नाम मैं भूल भी जाऊं। तो आप सब आये। मैं अपना निजी अभिप्राय दूं और मुझे अभिप्राय मिले भी हैं कि यहां जितने भी सत्र होते हैं गुरुकुल में अस्मितापर्व, संस्कृतपर्व, सद्‌भावना पर्व, शिक्षणपर्व आदि-आदि जब-जब हो; सभी की अपनी-अपनी अदा है, अपनी-अपनी रीत है। लेकिन इस बार का ये 'मानस-सम्मेलन' सबको लगा कि बहुत ऊपर गया है। और उसकी मुझे सबसे बड़ी प्रसन्नता है। मेरे लिए भी संस्कृतपर्व, अस्मितापर्व, केळवणी पर्व, सद्‌भावनापर्व और अन्य जो हो ये सब उपदेवता है। मेरा मूल देवता तो 'मानस' है। इसलिए आप सबकी मैं वंदना करता हूं।

तो बाप! मैं मेरी बहुत प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। और मैं आप सबसे प्रार्थना करता हूं कि आप तुलसीजयंती के अवसर पर कम से कम इन दिनों हमारे लिए दान करें। मैं बावा हूं, तलगाजरडी बावा हूं। हाथ में तांबडी लेकर घर-घर का लोट हमने मांगा है। और आज की आपके आशीर्वाद की स्थिति के बाद भी मैं कभी-कभी तांबडी लेकर तलगाजरडा के पांच घर में लोट मांगने जाता हूं ताकि मेरी ये जो मूल बात है ये मैं भूल न जाऊं। इसलिए आपसे मेरी मांग है कि आप इन दिनों में आते रहना। आपको कोई दबाव नहीं, क्योंकि प्रेम दबाव नहीं करता। प्रेम दूसरों के प्रेम में दब जाता है। इसलिए मैं चाहूंगा कि आप मुझे आशीर्वाद देने आते रहे। और मेरी इच्छा है, इच्छा तो नहीं मनोरथ, मैं महाप्रभुजी से शब्द लूं, पुष्टिमार्गीय शब्द का प्रयोग करूं कि मनोरथ कर रहा हूं कि ये चार दिन के बदले पांच दिन का हो। पहले दिन सायंकाल को प्रारंभ हो। बीच में हमें तीन दिन पूरे के पूरे प्राप्त हो और आखिरी दिन तुलसीजयंती के दिवस पर समापन हो। एक मेरा मनोरथ है। और विश्वनाथ महादेव की करुणा जब तक रहेगी, सोच लें। यहां से बहुत बार कहा गया हम काशीवासी हैं, हम काशीवासी हैं। लेकिन मैं काशीवासियों को मैं प्रार्थना करूं कि काशीवाले वासी न बन जाएं, तरोताजा रहें। तो आप सबका आशीर्वाद हो तो अगली बार पांच दिन का रखें? और हमारी कोशिश रहेगी। क्योंकि हमें क्या पता, यहां जो महापुरुष बोले हैं उससे तो हम अवगत हो चुके, पहले भी थे और यहां आकर के तो आप बरसे हैं। लेकिन खबर नहीं इनमें कौन-कौन कैसे छिपे होंगे! ये सबको जब-जब

अवसर मिले हां, हम आपको सुने। वक्ता श्रोता की मानसिकता से जब वक्ता को सुनता है तब वक्ता को बहुत फायदा होता है। लेकिन वक्ता वक्ता की मानसिकता से सुने तो बहुत घाटे का सौदा है। इसलिए मेरी ये श्रवणभक्ति है साहब! और मेरा 'मानस' कहता है-

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा।

दूसरी रति मम कथा प्रसंगा।

तो ये पांच दिन का हो लेकिन ये कायम हो न हो ये भी मैं वादा नहीं करता। मैं हंमेशा किसीको कथा देता हूं, कार्यक्रम देता हूं तो मेरा नब्बे प्रतिशत पक्का, दस प्रतिशत मैं हाथ में रखता हूं। देश-काल के अनुसार कल क्या हो ताकि वचनबद्धता के कारण मुझे पीड़ा न हो। इसलिए नब्बे प्रतिशत तो हम ये करते रहेंगे ताकि विश्वनाथ महादेव जब कहेंगे कि नहीं, अब बंद करो तो उसी दिन नथी रमता! उसी दिन बंद हो जायेगा। जिस दिन गणेश की स्थापना करते हैं उसी दिन विसर्जन भी तो करते हैं ना! इसमें विसर्जन में कौन आपत्ति हो। तो ये मेरा एक मनोरथ है।

बीच में कल जो घटना घटी, हरीशभाई ने उल्लेख भी किया, पूर्व प्रधानमंत्री अटलबिहारी बाजपेयीजी; जहां तक मेरा अनुभव है रूबरू का, 'मानस' और तुलसी के प्रति बड़ी आस्था रखते थे। मैंने भगवान, पौन घंटे तक नैरोबी की कथा में उसको सुना, 'मानस' और तुलसी। तब वो विदेशमंत्री थे। नैरोबी की कथा के आरंभ में हमने प्रार्थना की। साहब! जरा भी विषय चुके बिना वो तुलसी और 'मानस' पर जो बोले थे साहब चौपाई सहित साधार। ऐसे एक 'मानस'प्रेमी को हम सबने श्रद्धांजलि प्रदान की। मैं भी पुन: एक बार श्रद्धांजलि समर्पित करता हूं। तुलसी प्राकट्य का ये दिन। गार्गी बेटा, तूने आकर के बहुत अच्छा पद सुनाया, चौपाईयां सुनाई। खुश रहो बाप!

आज मुझे जल्दी निकलता है क्योंकि मुझे जहां तक संभव हो आज शाम तक गंगोत्री पहुंचना है। क्योंकि कल से वहां कथा शुरू करती है। यदि गंगोत्री न पहुंच पाया वेधर के कारण तो ऋषिकेश रुकना पड़ेगा। कल सुबह जाऊंगा। लेकिन कैसे भी मुझे यहां से निकलना है। इसलिए समय का अभाव है। लेकिन मेरे दादाजी के चरणों में, तलगाजरडा के मेरे मिट्टी के मकान के एक कोने में, ये घरनो मारा दादानी आंखनो खूणो हतो। अने 'लोचन जलु रह लोचन कोना।' जो कायम भीगा रहता था उस कोने की ये प्रसादी है।

एक बार 'रामायण' का अध्ययन चल रहा था। दादाजी मुझे एक-एक पंक्ति के तत्त्वार्थ, भावार्थ, शब्दार्थ समझाते थे। हमारे यहां दादाजी के पास हरे रंग की एक छोटी-सी अलमारी देहाती अलमारी पडी रहती थी। उसमें कुछ संस्कृत ग्रंथ रहते थे। इन ग्रंथो को मैं देखता था। एक दिन दादाजी आनेवाले थे, कुछ ग्रंथ देख रहा था। तो कहा कि बेटा, क्या देख रहा है? मुझे ये 'स्मृतिर्लब्धा।' तो एक ग्रंथ से एक कागज़ निकला। उसमें हमारी वैरागी, वैष्णवी साधु परंपरा; हम वैष्णवी परंपरा के गृहस्थ साधु में आते हैं, वैरागी कहलाते हैं। हमें कोई लोग बावा कहते हैं! आलोचना के रूप में भी बावा कहते हैं! और मैं बहुत खुश होता हूं कि बावा ही हूं। आशीर्वाद दो, कायम बावा बना रहूं। तो एक कागज़ निकला। उस कागज़ में, मेरे त्रिभुवनदास दादाजी जो मेरे सद्गुरु भगवान है उसके पिताजी रघुरामदादा, उसके हस्ताक्षर में एक कागज़ निकला। कितने साल पहले की ये बात है। उस समय के ये कागज मैं देख रहा था तो मैं चौंक गया! उसमें दो पंक्ति लिखी थी साहब!

तुलसी तुलसी तुलसी तुलसी
तुलसी तुलसी तुलसी तुलसी
तुलसी तुलसी तुलसी तुलसी
तुलसी तुलसी तुलसी तुलसी (रघुराम)

मैंने कहा कि ये क्या है? सोलह बार तुलसी, तुलसी, तुलसी, तुलसी ये कोई कविता है? ये क्या है? गद्य है? पद्य है? ये है क्या? जैसे ही मेरे दादाजी आये तो मैंने कहा कि दादा, ये कागज़ मिला है इसमें क्या है? तब मेरे दादा ने जो कहा, मैं वो आपको कहकर मेरी बात पूरी करूं। उसने कहा, बेटा, ये सोलह बार तुलसी तुलसीजी लिखा है, ये तुलसी की सोलह कला है। हुलसी के गर्भ नभ में इतने साल पहले एक चांद प्रकट हुआ जिसको माई का लाल कोई राहु ग्रस नहीं सका। जिसको गुरु अपमान का दोष नहीं लगा। न शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष उसको वृद्धि और कमी में आबद्ध कर सका। और ऐसा एक चांद माँ हुलसी के गर्भ नभ से प्रकट हुआ उसके बारे में दादा ने मुझे बताया कि बेटा, ये हर एक 'तुलसी' शब्द का विशिष्ट अर्थ होता है। और यही है पूज्यपाद गोस्वामीजी रूपी चांद की सोलह कलाएं।

तुलसी तुलसी तुलसी तुलसी
तुलसी तुलसी तुलसी तुलसी
तुलसी तुलसी तुलसी तुलसी
तुलसी तुलसी तुलसी तुलसी

ये सोलह कला कहने का मेरे पास अभी अवसर नहीं है। बाकी मैं व्यासपीठ से कभी कहूंगा अथवा तो अगले सम्मेलन में कहूंगा। मैं भूल जाऊं तो आप मुझे याद दिला देना। अद्भुत है सोलह कला। भगवन् मैं क्या कहूं आपको! तुलसी के सोलह रूप है इसमें। तुलसी पूर्ण है। तुलसी परिपूर्ण है। इसलिए मैं 'को बड़ छोट कहत अपराधु।' किसीकी तुलना नहीं करना चाहता। ऋषिभाई ने ठीक शब्दप्रयोग किया मैं कहता हूं कि 'रामचरित मानस' अखिल ब्रह्मांडीय सद्ग्रंथ है। विश्व को जरूरत पड़ी तो ओर सद्ग्रंथ आएंगे और हम उसको सिर पर रखकर नाचेंगे लेकिन अब तो पर्याप्त है 'रामचरित मानस।' जो सोलह कला से परिपूर्ण है तुलसी। केवल दो-चार संकेत करूं कि उसका विस्तार कभी व्यासढंग से करूंगा। तुलसी के सोलह रूप है साहब! एक तो तुलसी हम सब जानते हैं, एक पौधा है। गोस्वामीजी की पहली कला है तुलसी के पौधे की तरह जीना। एक कोने में रख दो, गमला वहां रह जायेगा। परसाल में रख दो, वहां रह जायेगा। आंगन में रख दो, वहां रह जायेगा। अगासी पर रख दो, वहां रह जायेगा। कोई ज्यादा मेहमान आये तो उसको हटाकर के किचन में रख दो। तुलसी की जो सरलता है ये तुलसी के पौधे की सरलता है। ये पहली कला है तुलसी के पौधे की हमारे सबके आंगन में।

मुझे याद है मोरिशस का ये प्रसंग कि मैं जा रहा था और मोरिशस में ट्रांजिट के रूप में एयरपोर्ट पर था। मोरिशस के कुछ भाई-बहनों जो 'मानस'-प्रेमी थे वो पता लगा तो मिलने आये। तीन घंटे मुझे एयरपोर्ट में रहना था तो मिले। इन लोगों ने मुझे कहा कि बापू, आपको मोरिशस आना चाहिए। मैंने कहा कि जब अवसर होगा तो जरूर आऊंगा। उसने कहा कि नहीं, अभी हमारे साथ एक घंटे तो आओ ही। फिर भी आपके पास दो घंटा रहेगा। मैंने कहा कि क्यों? बोले, आपको इसलिए मोरिशस आना पड़ेगा कि एक घर हमको मोरिशस का बताना कि जिसके आंगन में तुलसी का पौधा न हो! और मैंने वादा किया और मैं गया भी। तुलसी की जो सरलता है, तुलसी सीख देते हैं क्या? नहीं, अनुभूति का प्रसाद वितरित करते हैं। जो कहते हैं-

सरल सुभाव न मन कुटिलाई।

जथा लाभ संतोष सदाई।।

ये तुलसी में परिपूर्ण दिखता है। फिर भी माफ़ करियेगा। 'को बड़ छोट कहत अपराधु।' बाकी तुलसी जिस रूप में विश्व के ये प्रांगण में ये चांद ऊतरा है एक गज़ब की शीतलता लेकर एक गज़ब का शैत्य प्रकाश लेकर ये आदमी आया है।

मैं आपको एक मिनट के लिए 'महाभारत' में ले चलूं। विश्व में आप कल कह रहे थे दो प्रकार के वियोग। एक अशोक और एक सशोक। हमारे देश में, हमारे इन महान सद्ग्रंथो में दो स्वयंवर की कथा है। 'महाभारत' अंतर्गत द्रौपदी स्वयंवर और 'मानस' में सीता स्वयंवर। लेकिन एक ओर व्यास की तुलिका चल रही है, एक ओर तुलसी की। प्लीज़, 'को बड़ छोट कहत अपराधु।' लेकिन नयी चेतना आती है। ये पुरानी चेतना के कंधे पर बैठकर इन्हीं की कृपा से उसको और दिखाई देता है, ज्यादा दिखाई देता है वो अंकित करता है। साहब! दोनों स्वयंवर, दोनों में शर्त। यहां मत्स्यवेध किया जाए; यहां धनुष को चढ़ाया जाए अथवा तो तोड़ दिया जाए। थोड़ी तुलना और थोड़ा वो भी आप देखिये। पहले तो मैं ये कहना चाहूंगा कि द्रौपदी स्वयंवर ये नर का स्वयंवर है। जिसमें एक नर, एक वीर पुरुष, एक परम नर, अर्जुन द्रौपदी को प्राप्त करने के लिए साहसी कदम उठाता है। लेकिन 'रामचरितमानस' का स्वयंवर तुलसी ने जो रचा वो स्वयंवर नर का नहीं है, नारायण का है। जहां भगवान राघव आये हैं। ये ऊतर रहे हैं मैदान में। साहब! यहां तो अर्जुन आया; छद्म रूप में आया; ब्राह्मण वेश में आया इसलिए नीचे देखकर मत्स्यवेध करना पड़ा, क्योंकि छद्म रूप लेता है वो ऊंचा नहीं देख पाता। पानी में देखो। और मेरा राम छद्मरूप में नहीं आया, पद्मरूप में आया।

नवकंज लोचन कंज मुख कर कंज पद कंजारुणं।

इसलिए 'सियहि बिलोकि तकेउ धनु कैसें।' देखा तो माँ जानकी की और ऊपर देखा, नीचे नहीं देखा। क्योंकि दोनों स्वयंवर की एक बिलग-बिलग विधा है। सात कारण मुझे मिले गुरुकृपा से ये दोनों में। आपको ऐसा नहीं लगता साहब कि भगवान व्यास ने; व्यास माने क्या कहूं? मैंने अभी जो कानपुर में कथा कही 'मानस-गुरुपूर्णिमा' तब मैंने कहा कि गुरुपूर्णिमा अध्यात्मजगत से शुरू होनेवाला एक नया, मैं तुलसीजयंती को तुलसी संवत्सर कहता हूं उसको व्यास संवत्सर कहता हूं। गुरुपूर्णिमा की क्या कहूं! लेकिन व्यास स्वयंवर में ये बात आई कि धनुष पर बाण चढ़ाया जाए। आपको नहीं लगता कि 'महाभारत' के भीषण युद्ध का श्रीगणेश है। चढ़ाया जाए मतलब इसके पीछे एक भयंकर युद्ध आएगा और 'रामचरित मानस' का धनुष चढ़ाया नहीं गया है, शस्त्र तोड़ा गया है कि विश्व में

युद्ध न हो, विश्व में शस्त्र न हो, विश्व में शास्त्र की स्थापना हो। तोड़ दिया, 'तेहि छन राम मध्य धनु तोरा।'

वीरता से धनुष पर तीर चढ़ाने का ये युग नहीं है। वीरता तो ये है कि दुनिया शस्त्रमुक्त हो जाए, भगवान। हां, 'महाभारत' के जितने मरे हैं मुझे गिनवाओ साहब, कितने निर्वाण प्राप्त किये? पांडव तो गए आखिर में! उसमें भी कोई पहले लड़खड़ा गया। कोई इधर गया। किसी के उपर बर्फ़ की शिला पड़ी। कोई ये हुआ। और उसके कारण भी हमें बताते गए कि इसकी ये भूल थी इसलिए उसका ये हुआ, ये हुआ, ये हुआ। आखिर में धर्मराज गए। आप कहेंगे कि धनुष तोड़ दिया तो युद्ध क्यों हुआ? साहब! ये युद्ध निर्वाण का था और नवनिर्माण का था इसलिए मारे नहीं गए, जितने को मारे थे इसको पुनः जीवित किये। 'महाभारत' में कितने को जीवित किया? और मैं आपको कहूं भगवन्, मेरे दादाजी कथा नहीं कहते थे। गुरुकृपा, आप संतों का और व्यासजगत के सभी का आशीर्वाद है कि ये परंपरा तुम जिसको मोरारिबापू कहते हैं वहीं से शुरू हो रही है और मैं चाहता हूं वहीं ही पूरी हो जाये। परंपरा की महिमा है अवश्य। I agree और जितने भी प्रवक्ता बोले, 'वंदे गुरु परंपराम्।' ये होनी ही चाहिए लेकिन तलगाजरडा का ठुमका एक बिलग होता है। मुझे कई पूछते हैं, तुम्हारे दादाजी कथा कहते? नहीं। ये हमारे तलगाजरडा के पास एक काकीडी गांव है, पांच किलोमीटर दूर, वहां जाकर एक-एक महिना ठहरते तब देहातियों के पास 'महाभारत' की कथा करते थे। वो राम कथाकार नहीं थे। मैं सलाह देने के योग्य नहीं हूं, लेकिन बुजुर्गों का आशीर्वाद लेकर कहना चाहूं कि हमें और आपको केवल कथावाचक नहीं रहना है, कथापाचक होना है। हम लोग कहते हैं तो मुझे ठीक नहीं लगता कि ये कथावाचक है। काहे का कथावाचक? इनकी पीढ़ियों ने कथा पचाई है। मेरे हर एक वक्ता ने कहीं न कहीं ये कथा का रसायन पचाया है।

तो बाप! दादाजी आध घंटा, पौन घंटा 'महाभारत' पर यहां बात करते थे उसी का थोड़ा-सा प्रसाद मुझे जो शुक के मुख से जो गिर जाता है और हम खाकर के धन्य होते हैं ऐसे। तो द्रौपदी का स्वयंवर ये युद्ध का श्रीगणेश था। सीता का स्वयंवर; सीता तो शांति है, जगद्गुरु शंकर कहते हैं, ये तो शांति है। जरूर युद्ध हुआ है लेकिन एक बार मैं हमारे पूज्य राजेन्द्रदासजी भगवान को सुन रहा था अपने शक्तिपीठ में विंध्याचल में, तो आपकी कथा भी शुरू होनेवाली थी; मैं श्रवण करने गया तो आपने

वाल्मीकि का संदर्भ लेकर अपने ढंग से उसको पेश किया था कि राम और रावण का युद्ध हुआ और रावण बहुत श्रमित हो गया तब रघुनाथजी उसके पास जाते हैं और कहते हैं कि दशानन, मुझे लगता है, मेरे कारण आज आप बहुत घायल हुए हैं और श्रमित भी है। मैं चाहता हूं कि आज का युद्ध यहां रोका जाए और आप अपने महल में जाकर विश्राम करे और कल ताज़ेतरोज़े होकर आइयेगा। फिर कौशल्या का बेटा आपके सामने आएगा। तब रावण एक हाथ से पृथ्वी का आधार लेता हुआ राघवेन्द्र के सामने देखकर इनकी आंखें बोल उठी कि हे रघुनंदन, जिसको मैं तापस कहा करता हूं, जिसको नृपकिशोर कहता रहता हूं, कभी आदरणीय शब्द का मैंने आपके लिए प्रयोग नहीं किया और आज भी नहीं करूंगा क्योंकि मेरे स्वभाव से विरुद्ध है। मेरा भक्ति का ढंग ही बिलग है। उसी समय रावण ने कहा कि राघव, औपचारिकता बाकी रही, विजय तो आपका हो चुका है। होगा मेरे में बल लेकिन शील के मालिक तो आप है। तो कहने का मतलब ये सबके निर्वाण और नवनिर्माण का युद्ध था। और भगवान ने इन्द्र को सेवा सौंपी कि तू अमृतवृष्टि कर और जितने वीरगति को प्राप्त हुए थे सब प्रकट हुए हैं। साहब! द्रौपदी को प्राप्त करके पांडव जब गए तो कहा, हम भिक्षा लेकर आये हैं। मेरे राम ने कभी कहा कि मैं भिक्षा लेकर आया हूं? क्योंकि राम ने बताया कि मैं पुरुषार्थ से पाया। यद्यपि अर्जुन ने पुरुषार्थ से पाया, पर ये भिक्षा नहीं थी। और 'भिक्षा' शब्द आया तो पांच में बांट दी गई। सीता आशीर्वाद बांटती रही।

ताके जुग पद कमल मनावऊं।।

जासु कृपाँ निरमलमित पावऊं।।

तो सोलह कला है। मुझे याद दिलाना भाई कभी। सतुआबाबा, आपकी ये जवाबदारी। मेरी इच्छा थी कि मैं आज ही बोलूं साहब कला पर। लेकिन मुझे हरीशभाई रोकेंगे तो नहीं, न घंटी बजायेंगे लेकिन मुझे अनुशासन में रहना चाहिए और मज़बूरी भी है कि मुझे जाना है! तो बाप! ये सोलह कला है माँ तुलसी के चांद की। मंगलाचरण गोस्वामीजी करते हैं तब -

भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।

याभ्यां विना न पश्यंति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम् ।।

हनुमानजी और ये जो दो-दो सबकी वंदना करते हैं। पूरा 'रामचरित' व्यक्तिविशेष का नाम लेकर तुलसी ने वंदना की है। वाणी-विनायक, शिव-पार्वती, हनुमानजी-वाल्मीकिजी, सीता-राम इतने की जो वंदना की। साहब! गुरुकृपा से 'मानस' देखने से नहीं लगता कि ये जितने व्यक्तियों का नाम लिया है वंदना में इस मयी रामकथा है। कभी मुझे पूरी कथा वाणीरूप में दिखती है और वाणीरूपा है। ये वाणीमय है रामकथा और विनायक में भी है। विनायक का काम है। गणेश क्या है? वो मंगल करनेवाला है, बाधा को हटानेवाला है। 'रामचरित मानस मंगल करनी कलिमल हरनी।' तो ये मंगलमूर्ति का रूप है रामकथा। 'रामचरित' तो है ही और कल भगवन् कह रहे थे कि वाल्मीकिजी कहते हैं, सीता का चरित्र ही महत् है। इसलिए सीता और राममयी भी है। हम निम्बार्कीय परंपरा में हमारी उपासना मूल तो राधाकृष्ण की है लेकिन राम कोई कम तो नहीं। और खबर नहीं, कैलास परंपरा के कारण हमारी अद्भुत निष्ठा रही शिव के प्रति, महादेव के प्रति। सावन में मैं जब बिल्वपत्र चढ़ाता हूं तो महादेव पर नहीं चढ़ाता, मेरी 'रामायण' की पोथी पर चढ़ाता हूं क्योंकि मेरे लिए ये शिव है। मुझे ऐसी बातें आपको नहीं करनी चाहिए लेकिन 'त्रिदलं त्रिगुणाकारं त्रिनेत्रं च त्रियायुद्धम् त्रिजन्मपाप संहारं एक बिल्वं शिवार्पणम्।' कहकर के 'मानस' को ही मैं शिव मानता हूं। और 'मानस' दुर्गारूप है। अरे! राम जो 'दुर्गा कोटि अमित अरिमर्दन।'

तो रामकथा अपनेआप दुर्गा और वाल्मीकिमय है। जैसे व्यास सर्जक भी है और 'महाभारत' का पात्र भी है। वैसे वाल्मीकि 'वाल्मीकि रामायण' के सर्जक भी है और 'मानस' का एक पात्र भी तो है। 'मानस' वाल्मीकिमय है और 'मानस' हनुमानजीमयी तो सवाल ही नहीं है। मुझे खबर नहीं थी भगवन् कि 'आइए, हनुमंतजी बिराजिये' कहां से आया? हमारी परंपरा में हम सालों से बोल रहे थे लेकिन आपने अच्छा उद्घाटन किया कि श्रीनाथजी भगवान ने कहा कि कोई अयोध्या के महापुरुष का वो है। लेकिन ये बात तो आपने जो कहीं कि वो जो हनुमानजी का आसन था। ये बात मैं भी एक बार माधवबाग की कथा में बोल गया दादा से सुनकर ही। तो इस श्रद्धा में मेरे कोई फ़र्क नहीं पड़ा। महापुरुष के यहां ऐसा हो सकता है इसमें कोई आपत्ति नहीं लेकिन कभी-कभी क्या होता है कि मुझे माताजी और दादाजी ने कहा, बापू, आपके बारे में एक ऐसी बात चल रही है। मैंने कहा क्या? रायपुर में कथा कह रहे थे तब आपके पास एक कुर्सी थी। आप सबको मिल रहे थे तो आपने किसी को कहा कि कुर्सी हटा दो। तो स्वाभाविक है मैं कहूं तो ले लेते हैं। दो लोग आये हटाने गए

तो कुर्सी हटी नहीं! पांच आये, हटाने गए तो हटी नहीं! दस आये, हटाने गए तो टस से मस नहीं हुई! तो बोले बापू! सब ऐसा कहते हैं कि वहां हनुमानजी बैठे थे! मैंने कहा, मेरा हनुमान कुर्सी पर नहीं बैठता! कुर्सी पर ओर बंदर बैठते हैं! हनुमान कुर्सी पर बैठे? ये तो 'प्रेमसहित गादी धरूं', पहले व्यासपीठ हमें उसको अर्पण करनी पड़ती है। जब तक वो न बैठे तब हमारी कौन औकात कि हम जाएं। मैं तो व्यासपीठ की परिकम्मा करता हूं। ये परिकम्मा का रिवाज भी, कहां से शुरू हुआ ये तो इसको तलगाजरडा को याद करना पड़ेगा आपको कि पूरी परिकम्मा करके व्यास बैठते हैं। लेकिन कोई याद न करे तो पण पवित्र प्रवाही परंपरा चलती रहनी चाहिए। तो वहां मैं बैठता हूं। तो भगवन्, मैं एक ही बोलता हूं कि 'श्री व्यासपीठ शरणं प्रपद्ये। श्री व्यासपीठं शरणं प्रपद्ये।' अब तू जाने! 'यथायोग्यं तथा कुरु।' ये मेरा भाव रहता है। तो मैंने माताजी को कहा कि मेरा मौन था, मैंने कहा कि ये सब गलत है। गलत तो नहीं कहना चाहिए; लोकशाही भाषा में ये सत्य नहीं है ऐसा ही कहना चाहिए। ये सत्य नहीं है। ऐसा नहीं हो सकता। लेकिन ऐसे हमारे युवा कह रहे थे कल कि हवा महसूस की जा सकती है। प्यार कोई चीज नहीं; उसको रूह में महसूस करो। फिल्म का गीत है। मैं नहीं गाऊंगा।

वक्ता को मैं प्रार्थना करूं कि बुज़ुर्गों की गंभीरता को प्रणाम करें लेकिन युवान वक्ता स्फूर्त होना चाहिए। मुंह बिगाड़कर व्यासपीठ पर क्यों बैठते हो? क्या श्रोताओं ने गुनाह किया है? तुम्हारे कुल में से किसी की हत्या की है इन लोगों ने? अरे मुस्कुराओ यार! पर कई लोगों को मैंने देखा है कि आते ही बोले भई क्या! तुम्हारी कथा रखवाई है ये हमारा गुनाह है? प्रतिक्षण वर्धमान व्यासपीठ होती है। तुम जिसको मोरारिबापू कहते हो आदर से इसलिए बहुत आनंद है कि मेरी व्यासपीठ कितनी नयी-नयी चेतनाओं को उजागर कर रही है! कितने नये-नये वक्ता इस क्षेत्र में आ रहे हैं! तो अपने यहां क्या हो गया कि बहुत गंभीर ये बड़ा पंडित! ये बड़ा विद्वान, मानो धर्म ने मना कर दी कि हंसो ही मत! अरे, मेरा राम मुस्कुराये बिना बोलता नहीं। और मेरा एक परम आचार्य जिसकी याज्ञवल्क्य महाराज की चर्चा यहां हुई थी 'जागबलिक मुनि परम बिबेकी।' जब भरद्वाजजी ने पूछा तब 'जागबलिक बोले मुसुकाई।' मुस्कुराकर बोले। कभी हंसे नहीं उसके घर में बेटी मत देना! और उसके घर की बेटी लाना भी मत! धर्म तो मुस्कुराता होना चाहिए साहब!

कभी रोती कभी हंसती कभी लगती शराबी-सी।
महोब्बत करनेवालों की निगाहें और होती है।

तो कितना ताजापन विश्व को मिल रहा है! मेरे कथाजगत के कथाकारों का ये ऋण विश्व कभी नहीं चुका पायेगा। Yes, there is no doubt. कोई संदेह नहीं। आप 'भूरिदा जना:' है। आप कितना दे रहे हैं! 'वाल्मीकि रामायण' के हमें कई विद्वान मिल सकते थे। लेकिन मैंने महाराजश्री को क्यों कहा? क्योंकि अब जरूरी है शृंगार आरती हो। सबकी शयन आरती बहुत हो चुकी। शयन आरती और उसके बाद जहां देखो पर्दा बंद! जहां देखो शयन! मेरी इच्छा है शृंगार। क्या सजधजकर व्यासपीठ आई है! मैं बहुत प्राउड लेता हूं। इस बार तो सभी स्तर में गज़ब किया है! और अपनी अदा में ही रहना; अपनी अदा में ही बोलना। उधार लेकर क्या बोलना? और उधार लो तो नाम बोलो। ईमानदार बनो कि कहां से ये प्राप्त किया? जैसे मैंने कहा, मैंने दादा से लिया। ये कहो। बेईमानी नहीं होनी चाहिए। दूसरे का निवेदन अपने नाम चढ़ाना 'बेचहिं बेद' तरह पाप है। आप एक शायर का शे'र बोलते हैं तो नाम लेते हैं, तो एक वक्ता से तुमने कोई नया सूत्र पाया तो उसका नाम देने में आपको तकलीफ़ क्या है? लेकिन मुश्किल है ये स्वीकार। बहुत मुश्किल है। तो ज्यादा से ज्यादा शृंगार आरती हो।

तो आपके आशीर्वाद हैं। ऊर्जा जरूर बढ़ती है लेकिन अंदर हो तो ही बढ़ती है। ऊर्जा रोपी नहीं जाती; किसी के आशीर्वाद से प्रकट होती है। उसको ऊपर से बोया नहीं जाता। कोई गुरुकृपा सींचन करती है तब ये ऊर्जा आती है। तो मुझे तो कितना आनंद होता है! और मुझे जितना याद रहता है; आप टी.वी. पर देखना, जब भी याद आये, आपको बहुत कथा सुननी पड़ेगी, कब आपका नाम याद आये! मैं नाम लेकर बोलूंगा कि हमारे तुलसीजयंती पर इस महानुभाव ने कहा था। क्योंकि मैं क्यों छिपाऊं? मैंने आपसे कुछ पाया है। पाया है, कुछ पाया है, पंजाब में गाते हैं लोग।

पाया है कुछ पाया है।
मेरे सद्गुरु अलख लगाया है।

तो इसमें क्यों संकोच होना चाहिए? तो बाप! ये नयी-नयी चेतनाओं का मैं स्वागत करता हूं।

(कैलास गुरुकुल, महुवा (गुजरात) में आयोजित 'मानस-सम्मेलन' में प्रस्तुत वक्तव्य : दिनांक १७-८-२०१८)

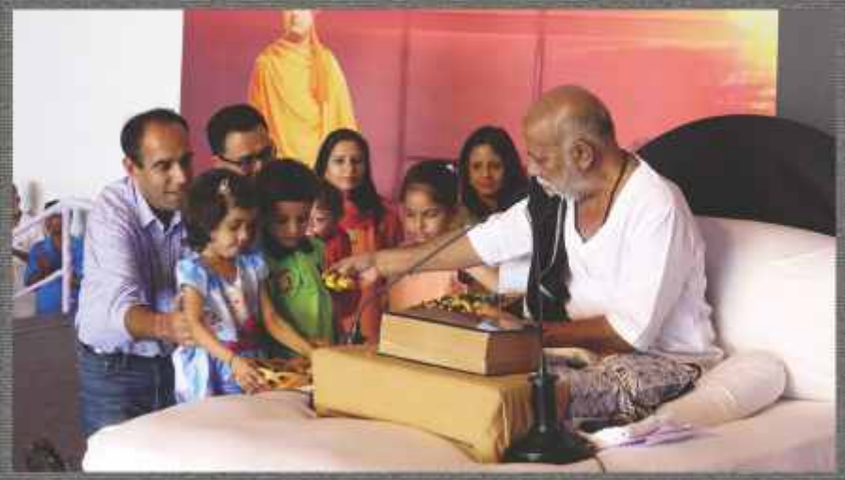

॥ जय सीयाराम ॥